DO TO YOU.

THE
Vast Treasury of
SANSKRIT-HINDI GRAMMATICAL TERMINOLOGY.

TOGETHER WITH
Poetical, Rhetorical, Dramatic & Musical

TECHNICALITIES.

BY

B. L. JAIN, 'CHAITANYA', C. T.
(BULANDSHAHRI.)

Assistant Master, Govt. High School, Barabanki (-Oudh)
Writer of "The Hindi Jain Encyclopædia," Author of more than forty other Treatises worth-reading in Hindi & Urdu, Translater of several Hindi, Urdu & English books

AND

Lexicographor of "A Comprehensive Lexicon OF Hindi Language" (in Press), &c.

Printed by Badri Prasada Shukl at the Desh Bandhu Press,
Bara Banki.

लेखक का नम्र निवेदन।

१. यह "संस्कृत हिन्दी व्याकरण-शब्दरत्नाकर" यद्यपि पचास साठ निम्नलिखित संस्कृत व हिन्दी व्याकरण और छन्द, अलंकार, नाटक, संगीत व कोष ग्रन्थों से यथा आवश्यक सहायता लेकर अतीव परिश्रम और बड़े शोध व खोज से बड़ी सावधानी के साथ सम्पादित किया गया है तथापि अल्पज्ञ मनुष्य से किसी न किसी प्रकार की अशुद्धियों या दोषों का रह जाना अनिवार्य है। अतः विद्वद्वर सज्जन महानुभावों से नम्र निवेदन है कि वे दोषों को क्षम्य दृष्टि से देखते हुए हमें उनसे सूचित करने की उदारता दिखाकर आभारी बनावें जिससे कि हम इसके अगले संस्करण के समय इसमें आवश्यक सुधार कर सकें:—

(१) लघुकौमुदी, सिद्धान्तकौमुदी, लघुजैनेन्द्र व्याकरण, शाकटायण व्याकरण आदि कई संस्कृत व्याकरण ग्रन्थ,

(२) संस्कृत बालबोध व्याकरण, संस्कृत प्रवेशिनी आदि हिन्दी भाषा युक्त संस्कृत व्याकरण ग्रन्थ,

(३) श्रीयुत पं० कामताप्रसाद गुरु रचित 'संक्षिप्त हिन्दीव्याकरण',

(४) पं० चन्द्रमौलि सुकुल रचित 'भाषा-व्याकरण',

(५) बा० गंगाप्रसाद M. A. रचित 'हिन्दी व्याकरण',

(६) बा० माणिकचन्द्र जैन B. A. रचित 'हिन्दी व्याकरण',

(७) संयुक्तप्रांत के शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी मिडिल व्याकरण',

(८) राजा शिवप्रसाद कृत 'भाषा भास्कर',

(९) प्रवेशिका हिन्दी व्याकरण,

(१०) हिन्दी व्याकरण चन्द्रोदय,

(११) हिन्दी चन्द्रोदय,

(१२) हिन्दी बालबोध व्याकरण। इत्यादि व्याकरण ग्रन्थ।

(१३) छन्द प्रभाकर व सरल पिंगलादि छन्दोग्रन्थ,

(१४) वाग्भटालंकार व काव्यालंकारादि अलंकार ग्रन्थ,

(१५) नाट्यशास्त्र व संगीत सुदर्शन आदि नाटक व संगीत ग्रन्थ,

(१६) विश्वकोष व प्रैक्टिकल संस्कृत-इंग्लिश व इंग्लिश संस्कृत आदि कोष ग्रन्थ।

इत्यादि-इत्यादि ५०-६० ग्रन्थ।

इस 'संस्कृत हिन्दी व्याकरण शब्द रत्नाकर' के लिखने में उपर्युक्त जिन २ ग्रन्थों से हमें कुछ भी सहायता प्राप्त हुई है उनके रचयिता महानुभावों के हम बड़े कृतज्ञ और आभारी हैं।

२. इस ग्रन्थ के अवलोकन से पाठक महाशयों को ज्ञात हो जायगा कि इस संक्षिप्त किन्तु अमूल्य और उपयोगी तथा कई प्रकार की विशेषताओं से युक्त अपने ढँग के अपूर्व संग्रह में कितनी बड़ी खोज से काम लिया गया है। तिस पर भी इस बात का निर्णय कि लेखक को अपने इस परिश्रम में कहां तक सफलता प्राप्त हुई है केवल पाठक महानुभावों के विचार पर ही निर्भर है। इत्यलम्।

हिन्दी साहित्य-प्रेमियों का सेवक,

हिन्दी साहित्य सेवी,

बी. एल. जैन, चैतन्य, (बुलन्दशहरी)

बाराबङ्की (अवध)

ता० २१ मार्च १९२५

श्री हिन्दी साहित्याभिधान
प्रथमावयव
"श्री बृहत् जैनशब्दार्णव"
प्रथमखंड—मूल्य ३।)

श्री हिन्दी साहित्याभिधान
तृतीयावयव
"श्री बृहत् हिंदी शब्दार्थ महासागर"
प्रथमखंड—मूल्य १)

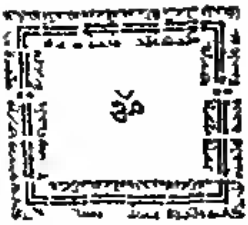

ॐ

हिन्दी साहित्य-अभिधान

द्वितीय अवयव

१. संस्कृत-हिन्दी व्याकरण-शब्दरत्नाकर

१. भाषा (Language)—जिस साधन द्वारा मनुष्य अपने मन के विचारों को दूसरों पर प्रकट करता है उसे 'भाषा' या बोली कहते हैं।

२. हिंदी भाषा (Hindi Language or Indian Language)—हिन्दुस्थान की भाषाको हिन्दी भाषाकहते हैं।

यह भाषा मुख्यतः प्राचीन "प्राकृत भाषा" का रूपान्तर है। 'हिन्दी' शब्द के शब्दार्थ की अपेक्षा यद्यपि इसमें हिन्दुस्थान के प्रायः सर्व प्रान्तों की भाषाएँ ब्रजी, पंजाबी, मारवाड़ी, गुजराती, महट्टी, बंगाली आदि गर्भित हैं तथापि आज कल जिस भाषा का नाम 'हिन्दी भाषा' है वह मुख्यतः गंगा यमुना के मध्यवर्ती और उनके आस पास के देशों की व्रजभाषा' आदि का रूपान्तर है जिसमें मुख्यतः संस्कृत के और गौणरूप उर्दू भाषा के (अर्थात् पुरानी हिन्दी और फ़ारसी, अरबी, तुरकी, अंगरेजी आदि अनेक भाषाओं के संयोजनरूप भाषा के) अनेक शब्द सम्मिलित हैं।

३. (१) मौखिकभाषा (Spoken Language)—जो भाषा शब्दों और वाक्यों के उच्चारण या ध्वनि से बनती है उसे "मौखिकभाषा" कहते हैं।

४ कथित भाषा—"मौखिक भाषा" ही को "कथित भाषा" भी कहते है। (न. ३)

५. शब्दोच्चरित भाषा—मौखिक भाषा ही को "शब्दोच्चरित भाषा" भी कहते हैं। (न. ३

६. शब्दात्मक भाषा—मौखिक भाषा ही को "शब्दात्मक भाषा भी कहते हैं। (न.३)

७. (२) लिखित भाषा (Written Language)—जो भाषा अक्षरों, शब्दों और वाक्यों के लिखने से बनती है उसे 'लिखित भाषा' कहते हैं।

८. चिह्नात्मक भाषा—लिखित भाषा ही को "चिह्नात्मक भाषा" भी कहते हैं। (न: ७)

९. (१) गद्य (Prose)—भाषा के जिस विभाग में मात्राओं, अक्षरों और पदों की गिनती आदि के सम्बंध में कोई विशेष नियम नहीं होते, अर्थात् जिस में छन्द रचना के नियमों का बन्धन नहीं होता, उसे 'गद्य' कहते हैं। यह भाषा सर्व साधारण की नित्यप्रति की बोल चाल की भाषा है।

१०. गद्यभाग--गद्य ही को "गद्यभाग" भी कहते हैं। (न. ९)

११. गद्यात्मक भाषा—गद्य ही को "गद्यात्मक भाषा" भी कहते हैं। (न. ९)

१२. (२) पद्य (Poetry or Verse)—भाषाके जिस विभाग में पद, वाक्य, आदि छन्दशास्त्र के नियमानुकूल तोल नाप कर रचे गये हों उसे 'पद्य' कहते हैं।

१३. पद्यभाग--पद्य ही को "पद्यभाग" भी कहते हैं। (न. १२)

१४. पद्यात्मक भाषा--पद्य ही को "पद्यात्मक भाषा" भी कहते हैं। (न. १२)

१५. व्याकरण (Grammar)—जिस विद्या की सहायता से किसी भाषा के (मुख्यतः गद्यात्मक भाषा के और गौणतः पद्यात्मक भाषा के भी) ठीक ठीक लिखने पढ़ने बोलने समझने का तथा शब्द रचना और उनकी व्युत्पत्ति आदि का यथार्थ ज्ञान हो उसे 'व्याकरण' कहते हैं।

१६. शब्द विद्या—व्याकरण ही को "शब्द विद्या" भी कहते हैं। (न. १५)

१७. व्याकरण शास्त्र (A Book of Grammar, A Book of Wording or Accidence)—जिस शास्त्र या ग्रन्थ में 'शब्द-विद्या' या 'व्याकरण' के नियमों का कथन हो उसे 'व्याकरण शास्त्र' कहते हैं।

१८. शब्द शास्त्र--व्याकरण शास्त्र ही को "शब्द शास्त्र" भी कहते हैं। कोषग्रन्थ जिनमें शब्दों का अर्थ आदि होता है कभी २'शब्द शास्त्र' की ही गणना में गिने जाते हैं। (न.१७)

१९. हिन्दी व्याकरण (Hindi Grammar) जिस व्याकरण विद्या से हिन्दी भाषा के ठीक ठीक लिखने पढ़ने आदि का यथार्थ बोध हो उसे 'हिन्दी व्याकरण' कहते हैं।

२०. (१) अक्षर विचार (Orthography)—व्याकरण के जिस विभाग में अक्षरों के आकार, उच्चारण और मिलाने आदि का वर्णन हो उसे 'अक्षर विचार' कहते हैं।

२१. (२) शब्द विचार (Etymology)—व्याकरण के जिस विभाग में शब्दों के भेद, अवस्था, रूपान्तर, व्युत्पत्ति और उनके प्रयोग आदिका वर्णनहो उसे 'शब्द विचार' कहते हैं।

२२. शब्द साधन—शब्द विचार ही को 'शब्द साधन' भी कहते हैं। (न० २१)

२३. (३) वाक्य विचार (Syntax)--व्याकरण के जिस विभागमें वाक्यों के अवयवों के पारस्परिक सम्बन्ध, शब्दों से वाक्य बनाने की रीति, और उन वाक्यों के भेद आदि का निरूपण हो उसे 'वाक्य विचार' कहते हैं।

२४. वाक्य विन्यास—वाक्य विचार ही को 'वाक्य विन्यास' भी कहते हैं। (न० २३)

२५. (१) गद्यविचार (Science of prose)—व्याकरणके जिस विभाग में 'गद्यात्मक भाषा' के नियमों का निरूपण हो उसे 'गद्य-विचार कहते हैं। व्याकरण शास्त्र का यही मुख्य विभाग है।

२६. (२) पद्यविचार (Prosody or Science of poetry or Vercification)—व्याकरण के जिस विभाग में 'पद्यात्मक भाषा' के केवल भाषा सम्बन्धी नियमों पर विचार किया गया हो उसे 'पद्यविचार' कहते हैं।

व्याकरणशास्त्र का यह गौणविभाग है। मुख्यतः 'पद्यविचार' छन्दशास्त्र का विषय है और इसलिये 'पद्यविचार' वह विद्या है जिसमें 'छन्दशास्त्र' के नियमों पर विचार किया गया हो।

२७. अक्षर (Letter)—शब्द के उतने अंश या मूल ध्वनि का नाम 'अक्षर' है जिसका फिर विभाग या अंश न हो सके। जैसे—ज्ञान' शब्द में ज, ञ, आ, न, अ, यह ५ विभाग या अंशअविभागी या मूलध्वनिरूप हैं। इन अंशों में से प्रत्येक को 'अक्षर' कहते हैं।

२८. वर्ण—अक्षर ही को वर्ण भी कहते हैं। (नं० २७, ४३, ७०-७३)।

२९. (१) भावाक्षर या लब्ध्यक्षर (Mental ability to pronounce a letter)—ध्वन्यात्मक शब्द के अविभागी अंश या मूल ध्वनि की उत्पत्ति की कारणरूप शक्ति को 'भावाक्षर' या 'लब्ध्यक्षर' कहते हैं।

यह अकृत्रिम अनादिनिधन और अक्षय है इसी से इसके कार्यरूप मूलध्वनि या शब्द के अविभागी अंश को 'अक्षर' कहते हैं जो कर्णेन्द्रिय का विषय है। (नं. ३०)

३०. निर्वृत्यक्षर (Utterance or pronunciation of a letter)—शब्द के अविभागी अंशोच्चारण या मूलध्वनि को 'निर्वृत्यक्षर' कहते हैं। यह कर्णेन्द्रिय का विषय है।

३१. (२) द्रव्याक्षर (Written form of a letter)—भावाक्षर अथवा मूलध्वनि (निर्वृत्यक्षर) के प्रतिनिधि रूप आकारों या चिह्नों को 'द्रव्याक्षर' या 'स्थापनाक्षर' कहते हैं। (नं. २९,३०)

यह कृत्रिम हैं और इसीलिये इनकी रचना भिन्न २ देशों और भिन्न २ समय में यथा आवश्यक भिन्न २ प्रकार की लिपियों में (आकारों या चिह्नों में) होती और अदलती बदलती रहती है। द्रव्याक्षर नेत्रेन्द्रिय का विषय है। इसी से इन्हें 'वर्ण' भी कहते हैं। साधारणतः 'द्रव्याक्षर' या "वर्ण' ही को 'अक्षर' बोलते हैं।

३२. स्थापनाक्षर—द्रव्याक्षर ही को 'स्थापनाक्षर' भी कहते हैं। (नं० ३१)

३३.-३९. लिपि (Writing, a mode of writing or form of letters in writing)—अक्षरों के चिह्नों या बनावट या लिखावट को 'लिपि' कहते हैं।

लिपि ही को ३४. अक्षरलिपि, ३५. अक्षरन्यास, ३६. अक्षर विन्यास, ३७. अक्षर संस्थान, ३८. अक्षरलेख, ३९. अक्षरपाटी, या वर्णलिपि, वर्णन्यास आदि भी कहते हैं।

४०. हिन्दी लिपि (Hindi writing)—हिंदी भाषा जिस लिखावट में लिखी जाती है उसे 'हिन्दी लिपि' कहते हैं।

यह लिपि तथा पंजाबी, गुजराती, बङ्गाली आदि हिन्दुस्थान की प्रायः अन्य सर्व लिपियां भी प्राचीन 'ब्राह्मी लिपि' का रूपान्तर हैं।

४१. नागरी लिपि—हिंदीलिपि ही को "नागरी लिपि" भी कहते हैं। (नं० ४०)

४२. देवनागरी लिपि—हिंदीलिपि ही को 'देवनागरी लिपि' भी कहते हैं। (नं० ४०)

४३. स्वर (Vowel)—जो अक्षर अन्य किसी अक्षर की सहायता विना स्वयं ही उच्चारण किये जा सकें वे स्वर, 'स्वरवर्ण या 'स्वराक्षर' कहलाते हैं। (नं. ७०)

'स्वर' गिनती में १६ निम्नलिखित हैं:—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः

आज कल की हिन्दी भाषा में ॠ ऌ ॡ को छोड़ कर प्रायः शेष १३ स्वर ही प्रयोग में लाये जाते हैं। इन १३ में से भी अन्त के दो स्वर अं और अः वास्तवमें शेष स्वरोंकी समान स्वर न होने और व्यञ्जनों से भी समानता न रखने से 'योगवाह' के नाम से अलग गिनाये जाते हैं। (नं० ७६)

४४. (१) लघुस्वर (Short Vowel)—जिन स्वरों के उच्चारण में एक मात्रा काल लगे उन्हें 'लघुस्वर' कहते हैं। अ इ उ ऋ ऌ यह ५ लघु स्वर हैं। (नं ८३)

४५. ह्रस्वस्वर—लघु स्वर ही को 'ह्रस्वस्वर' भी कहते हैं। (नं० ४४)

४६. (२) गुरुस्वर (Long Vowel)—जिन स्वरों के उच्चारणमें दो मात्राकाल लगता है उन्हें 'गुरु स्वर' कहते हैं। आ ई ऊ ॠ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः, यह ११ गुरु स्वर हैं। (नं०८३)

४७. दीर्घस्वर—गुरु स्वर ही को 'दीर्घस्वर' भी कहते हैं। (नं० ४६)

४८. (३) प्लुत स्वर (Prolated Vowel)-किसी गुरु स्वरके उच्चारण में जहां तीन मात्राकाल लगे तो वहां उस स्वर को 'प्लुतस्वर' कहते हैं। जैसे 'ओम्' शब्द को उच्चारण करने में 'ओ' का कुछ अधिक लम्बे स्वर से उच्चारण किया जाता है अतः यहां 'ओ' प्लुतस्वर' है। प्लुत स्वरोच्चारण करने की पहिचान के लिये उस स्वर के आगे प्रायः ३ का अङ्क लिख दिया जाता है। जैसे—'ओ३म्'।

प्लुत स्वर प्रायः प्राकृत व संस्कृत शब्दों में तो आते ही हैं, परन्तु हिन्दी भाषा में भी कभी कभी किसी को पुकारते समय जिसे पुकारा जाय उसके नाम के अन्तिम भाग पर या विस्मयादि बोधक शब्दों पर अथवा किसी अन्य शब्द पर भी अधिक बल देते समय प्लुत स्वर का प्रयोग किया जाता है। (नं०८३)

४९. (१) मूलस्वर (Primitive Vowel)—जिन स्वरों की उत्पत्ति किसी अन्य स्वर से या स्वरों के मेल से नहीं है उन्हें 'मूलस्वर' कहते है।

सर्व 'लघुस्वर' या 'ह्रस्वस्वर' मूल-स्वर हैं (नं० ४४, ४५)

५०. (२) सन्धिस्वर (Diphthong)—मूल स्वरों के मेल से बने हुए स्वरों को 'सन्धिस्वर' कहते हैं। सर्व गुरु स्वर या दीर्घ स्वर 'सन्धि स्वर' हैं। (नं० ४६, ४७)

५१. (१) दीर्घसन्धि स्वर (Long Diphthong)—किसी एक मूलस्वर में उसी मूल स्वर के मिलनेसे जो स्वर बनताहै उसे 'दीर्घ सन्धि स्वर' कहतेहैं। जैसे-अ+अ=आ, इ+इ=ई, उ+उ=ऊ, ऋ+ऋ=ॠ, ऌ+ऌ=ॡ, अर्थात् आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ, यह ५ 'दीर्घ-सन्धिस्वर' हैं।

५२. (२) संयुक्तसंधिस्वर (Mixed Diphthong)—भिन्न भिन्न मूलस्वरों के या सन्धि स्वरों के मेल से जो स्वर बनते हैं उन्हें 'संयुक्तसंधिस्वर' कहते हैं। जैसे अ+इ=ए, अ+उ=ओ, आ+ए=ऐ, आ+ओ=औ, अ+ं (अनुस्वार)=अं, अ+ः (विसर्ग) =अः, अर्थात् ए ऐ ओ औ अं अः, यह ६ "संयुक्तसंधिस्वर" हैं। (न.४९,५०)

५३. सवर्णस्वर (Homogeneous Vowels)—१० समान स्वरों में से समान स्थान और समान प्रयत्न से उत्पन्न होने वाले स्वरों को 'सवर्णस्वर' या "सवर्णी स्वर" कहते हैं। (न. १०३, १२९-१३६)

अ आ परस्पर सवर्णी हैं इसी प्रकार इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ ॡ, यह दो दो स्वर भी परस्पर सवर्णी हैं।

५४. सजातीय स्वर—'सवर्ण स्वरों' ही को 'सजातीयस्वर' भी कहते हैं। क्योंकि प्रत्येक युगल का उच्चारण स्थान मुखका एक एक अवयव ही है। (न. ५३)

५५. समान स्वर—सवर्ण स्वरों ही को "समानस्वर" भी कहते हैं। (नं० ५३)

५६–५९. असवर्ण स्वर (Non homogeneous Vowels)-जिन स्वरोंके स्थान और प्रयत्न समान नहींहै वे 'असवर्णस्वर' कहलातेहैं। जैसे—अ इ, अ उ, इ उ इत्यादि परस्पर असवर्ण हैं। ए ऐ ओ औ भी 'असवर्णस्वर' हैं, क्योंकि ये अन्य असवर्ण स्वरों से ही बने हैं।

असवर्ण स्वरों ही को ५७ 'असवर्णी स्वर' ५८ 'विजातीय स्वर' ५९. 'असमानस्वर' भी कहते हैं।

६०. (१) अनुनासिकस्वर (Nasal vowel)—किसी शब्द में जहां किसी स्वर को उच्चारण करते समय श्वास का कुछ अंश नासिका द्वारा भी निकालना पड़ता हैं तो वहाँ उस स्वर को 'अनुनासिक स्वर' कहते हैं। (न० १३, १४०)

६१. सानुनासिक स्वर--अनुनासिक स्वर ही को 'सानुनासिक स्वर" भी कहते हैं।

किसी स्वर का ऐसा उच्चारण प्रकट करने के लिये उसके ऊपर चन्द्रबिन्दु चिह्न लगा दिया जाता है। जैसे—अँगरेजी, आंगन, इँगलैंड, ईंट, उँगली, ऊँचा, एँड़ना, ऐंचना, ओंघना, औंडा, बँगला, बाँग सिंघाड़ा, साँग, फुँकनी फूँकना, भेंट, भैंस गोंद, माँदू, इत्यादि। ऐसा स्वर जब किसी शब्द के अन्त में हो तो चन्द्रबिन्दु की जगह केवल बिन्दु अर्थात् अनुस्वार ही लगाया जा सकता है। जैसे—मैं में, कहां, क्यों, गेहूं, हैं करू लड़कियां, इत्यादि। (न० १४४-१४७)

६२. (२) निरनुनासिक स्वर (Pure Vowel)—जहां स्वरों का शुद्ध उच्चारण नासिका की सहायता बिना किया जाता है वहां सर्वत्र सब स्वर 'निरनुनासिक' ही होते हैं। (न०१४१)

६३ अननुनासिक स्वर—निरनुनासिक स्वरों ही को अननुनासिक स्वर' भी कहते हैं।

६४. नामीस्वर--१६ स्वरों में से पहिले दो स्वर अ आ, और अंत के दो स्वर अं अ: को छोड़ कर शेष १२ स्वर 'नामीस्वर कहलाते हैं।

६५. अवर्ण—अ आ, इन दो अक्षरों को अवर्ण कहते हैं।

६६ इवर्ण—इ ई को इवर्ण कहते हैं।

६७. उवर्ण—उ ऊ को उवर्ण कहते हैं।

६८. ऋवर्ण—ऋ ॠ को ऋवर्ण कहते हैं।

६९. ऌवर्ण—ऌ ॡ को ऌवर्ण कहते हैं।

७०—७३ व्यंजन (Consonant)—जिन अक्षरों का उच्चारण (स्पष्ट उच्चारण) किसी न किसी स्वर के सहारे से होता है उन्हें व्यंजन कहते हैं। इनके उच्चारण में अर्द्धमात्रा काल लगता है। (न० ८३)

वे गिनती में निम्नलिखित ३३ हैं—क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ् ञ् ट् ठ् ड् ढ् ण् त् थ् द् ध् न् प् फ् ब् भ् म् य् र् ल् व् श् ष् स् ह्।

व्यंजन ही को ७०. व्यंजनवर्ण, ७१. व्यंजनाक्षर, और ७२. हल् भी कहते हैं।

७४ व्यंजन चिह्न (Consonant mark)—३३ व्यंजनोंमें से प्रत्येकके नीचे जो एक तिरछी छोटी सी रेखा इस आकार ् की लगाई गई है वह 'व्यंजन चिह्न' है। बिना इस चिह्न के लगाये यह अक्षर अकेले व्यंजन या शुद्ध व्यंजन नहीं माने जाते किन्तु अव्यक्त या अप्रकट रूप से इनके आगे अ स्वर का संयोग माना जाता है।

७५. हलूचिह्न—व्यंजन चिह्न ही को 'हलूचिह्न' भी कहते हैं।

७६. योगवाह (Yogvaha)--'योगवाह' (अथवा अयोगवाह) वे अक्षर हैं जिनका उच्चारण किसी दूसरे अक्षर के योग से ही होता है।

जिनका उच्चारण उनके पूर्व किसी व्यक्त या अव्यक्त स्वर को जोड़ने से होता है ऐसे योगवाह दो हैं—अनुस्वार और विसर्ग। और जिनका उच्चारण उनके आगे लगे क ख अथवा प फ व्यंजनों के साथ ही होता है ऐसे योगवाह भी दो ही हैं—जिह्वामूलीय और उपध्मानीय जिनके चिह्न या आकार ᳵ और ᳶ यह हैं।

नोट १.—कोई कोई वैयाकरण अनुस्वार और विसर्ग, इन दो ही को योगवाह या अयोगवाह कहते हैं।

नोट २.—अनुस्वार (ं) और विसर्ग (:) के चिह्नों का अन्य अक्षर चिह्नों के समान उच्चारण करने के लिये इनके पूर्व अ स्वर जोड़ कर हिन्दी भाषा में इन्हें इस प्रकार अं अः लिखने की रीति है। इसी लिये अन्य स्वरों से बहुत कुछ समानता रखने तथा इनके उच्चारण में इनके पूर्व सर्वदा कोई न कोई स्वर व्यक्त या अव्यक्त रूप से रहने के कारण इनकी गणना स्वरों में की जाती है परन्तु जिस प्रकार व्यंजनों का उच्चारण विना कोई स्वर जोड़े नहीं होता इसी प्रकार अनुस्वार और विसर्ग का भी उच्चारण विना कोई स्वर जोड़े नहीं होता। इसी लिये कोई २ वैयाकरण इन्हें व्यंजनों की गणना में गिन लेते हैं। पर वास्तव में यह व्यंजन भी नहीं हैं, क्योंकि व्यंजनों में उच्चारणार्थ स्वर आगे जोड़ा जाता है और अनुस्वार और विसर्ग में पहिले जोड़ा जाता है। (न० ७७, ७८)

नोट ३.—जिह्वामूलीय और उपध्मानीय के चिह्नों या आकारों (ᳵ ᳶ)का अन्य अक्षर-चिह्नों के समान उच्चारण करने के लिये जिह्वामूलीय के आगे क और ख, और उपध्मानीय के आगे प और फ व्यंजन लिखे जाते हैं, क्योंकि इनहीं अक्षरोंके उच्चारण से उनके उच्चारण की बहुत कुछ समानता है। (न. ७९, ८०)

७७. (१) अनुस्वार (Nasal mark or point)--किसी अक्षर के ऊपर जो १५वें स्वर अं का चिह्नरूप विन्दु लगाया जाता है उसे 'अनुस्वार' कहते हैं।

७८. (२) विसर्ग (Emission of Breath)--किसी अक्षर के आगे जो १६वें स्वर अः के चिह्नरूप दो विन्दु ऊपर नीचे लगाये जाते हैं उन्हें 'विसर्ग' कहते हैं।

७९. (३) जिह्वामूलीय वर्ण (Linguæ-radical)--जिह्वा के मूल से उच्चारण किये जाने वाला केवल एक अक्षर ᳵ 'जिह्वामूलीयवर्ण' है। इसका उच्चारण उर्दू भाषा के क़ाफ़ ق और ख़े خ अक्षरों की समान दो प्रकार से वेदमंत्रों में या प्राकृत भाषा में किया जाता है जो अर्द्ध विसर्ग युक्त क और ख से बहुत कुछ समानता रखता है। इसी लिये इसके दोनों प्रकार के उच्चारण के प्रकट करने को इसके आगे क और ख अक्षर यथा आवश्यक लिखने की रीति प्रचलित है। यथा ᳵक और ᳵख॥

८०. (४) उपध्मानीयवर्ण (Dento labial letter)--ᳶयह एक वर्ण उपध्मानीयहै। इसका उच्चारण भी वेदमंत्रों में या प्राकृत भाषामें दो प्रकार से किया जाताहै जो अर्द्ध विसर्गयुक्त प और फ के उच्चारण के बहुत कुछ समान है और उर्दू भाषा के फ़े ف अक्षर के उच्चारण

से अधिक समानता रखता है। इसीलिये इस के दोनों प्रकार के उच्चारण को प्रकट करने के लिये इसके आगे यथा आवश्यक प और फ अक्षर लिख दिये जाते हैं। यथा ≍ प और ≍ फ ॥

८१ युग्माक्षर (Dual Consonants)—युग्माक्षर वे अक्षर हैं जिन में दो दो अक्षर ऐसे मिले हों कि उनका मूल आकार अदृष्ट होकर एक २ नवीन आकार के अक्षर बन गये हों। वे हिंदी भाषा में ३ हैं-क्ष् त्र् ज्ञ्। इनमें से क्ष् तो क और ष के मेल से, त्र, त और र के मेल से, और ज्ञ, ज और ञ के मेल से बने हैं।

८२ यमाक्षर—युग्माक्षर ही को 'यमाक्षर' भी कहते हैं।

८३ मात्रा(Vowel marks)—स्वर के उस परिवर्तित चिह्न का नाम 'मात्रा' है जो स्वर को व्यंजन के साथ मिलाने के समय लिखा जाता है। अक्षरों के उच्चारण के कालमान को भी 'मात्रा' कहते हैं।

अ स्वर के लिये कोई चिह्न नहीं है जब यह स्वर किसी व्यंजन के आगे जोड़ा जाता है तो उस व्यंजन का पूरा रूप हल चिह्न लगाये बिना लिख देते हैं। ऋ ॠ यह दो स्वर केवल कुछ संस्कृत शब्दों में व्यंजन के आगे अपने पूर्ण आकार में जोड़े जाते हैं। इनका परिवर्तित चिह्न कोई नहीं है। शेष १३ स्वरों के लिये क्रम से ा ि ी ु ू ृ ॄ ॅ े ै ॉ ो ौ ं ः यह १३ चिह्न हैं। इन में से पहिले ११ चिह्न 'मात्रा' कहलाते हैं। बारहवें चिह्न का नाम अनुस्वार और तेरहवें का विसर्ग है। (न. ७७, ७८)

८४-९१. वर्णमाला (Alphabet)- सर्व अक्षरों या वर्णों (स्वरों और व्यंजनों) के समुदाय को 'वर्णमाला' कहते हैं।

वर्णमाला ही का ८५. वर्ण समाम्नाय, ८६. अक्षरमाला, ८७. अक्षरसमाम्नाय, ८८ अक्षरश्रेणी, ८९. अक्षरावली, ९०. अक्षरमालिका, ९१ अक्षरमातृका, या वर्णश्रेणी, वर्णावली, आदि भी कहते हैं।

नोट—प्राकृत भाषा की वर्णमाला में २७ स्वर, ३३ व्यंजन, और ४ योगवाह, सर्व ६४ मूलाक्षर और अनेक संयोगी अक्षर हैं। संस्कृत भाषा की वर्णमाला में २२स्वर,३३व्यंजन, ४ योगवाह और ४ यम या युग्माक्षर, सर्व ६३ अक्षर हैं। हिन्दी भाषा की वर्णमाला में १६ स्वर, ३३ व्यंजन,और३युग्माक्षर,सर्व ५२अक्षर हैं। आजकलकीहिन्दीभाषामेंकिसीकीसम्मति में १३ स्वर, ३३ व्यंजन, और ३ युग्माक्षर,और किसी की सम्मति में ११ स्वर, ३३ व्यंजन, दो योगवाह, और ३ युग्माक्षर, सर्व ४९ अक्षर हैं। इसी प्रकार उर्दू भाषामें सर्व ३८,अरबी भाषा में २८, अँगरेजी भाषा में २६, फारसी भाषा में २५ अक्षर हैं। इत्यादि ॥

९२. (१) स्पर्श व्यंजन
९३. स्पृष्ट व्यंजन
} (Touch Consonants)—३३ व्यंजनों में से प्रारम्भ के क् से म् तक के २५ व्यंजन "स्पर्शव्यंजन' या 'स्पृष्ट व्यंजन' कहाते हैं।

९४ कवर्ग व्यंजन—क आदि ५ व्यंजनों के समूह को "कवर्ग" कहते हैं। वे यह हैं.-क् ख् ग् घ् ङ्

९५. चवर्ग व्यंजन—च् छ् ज् झ् ञ्

९६. टवर्ग व्यंजन—ट् ठ् ड् ढ् ण्

९७. तवर्ग व्यंजन—त् थ् द् ध् न्

९८. पवर्ग व्यंजन—प् फ् ब् भ् म्

९९. (२) अन्तस्थ व्यंजन (Semi-Vowels)—य् र् ल् व्, यह ४ अक्षर 'अन्तस्थ व्यंजन' कहाते हैं। क्योंकि यह स्पर्श व्यंजनों और ऊष्म व्यंजनो के बीच (मध्य) में स्थित हैं।

१००. अन्तस्थ चतुष्क—'अन्तस्थ व्यंजनों' ही को 'अन्तस्थ चतुष्क' भी बोलते हैं। क्योंकि यह गणना में ४ हैं।

१०१. (३) ऊष्म व्यंजन (Sibilants & the aspirate)-श् ष् स् ह्, यह ४ अक्षर 'ऊष्म व्यंजन' कहाते हैं। क्योंकि इनको उच्चारण करते समय मुख से ऊष्म (उष्ण, गर्म) वायु निकलती है।

१०२. ऊष्म चतुष्क—'ऊष्म व्यंजन' ही का दूसरा नाम 'ऊष्म चतुष्क' भी है।

१०३. प्रयत्न (Effort of utterance)—वर्णों के उच्चारण की चेष्टा या रीति को 'प्रयत्न' कहते हैं।

१०४. (१) आभ्यन्तर प्रयत्न (Internal effort of utterance)—ध्वनि उत्पन्न होने के पूर्व मुख में वागिन्द्रिय की चेष्टा या क्रिया को 'आभ्यन्तर प्रयत्न' कहते हैं।

१०५. (२) बाह्यप्रयत्न (External effort of utterance)—ध्वनि उत्पन्न होने पर कण्ठ आदि में वागिन्द्रिय की चेष्टा या क्रिया को 'बाह्यप्रयत्न' कहते हैं।

१०६. (१) अघोषव्यंजन }
१०७. विवारश्वास अघोष व्यंजन } (Surds or hard consonants)—जिन १३ व्यंजनों के उच्चारण के बाह्यप्रयत्न में नाद रहित केवल श्वास का उपयोग होता है वे 'अघोषव्यंजन' या 'विवारश्वास अघोषव्यंजन' कहाते हैं। वे यह हैं—क ख च छ ट ठ त थ प फ श ष स।

१०८. (२) घोषव्यंजन (Sonants or soft consonants)—जिन व्यंजनों के उच्चारण के बाह्य प्रयत्न में कुछ नाद का भी उपयोग होता है वे ३३ व्यंजनों में से १३ अघोषव्यंजनों को छोड़ कर शेष २० व्यंजन 'घोषव्यंजन' कहाते हैं।

१०९. संवारनाद घोषव्यंजन—घोषव्यंजनों ही को 'संवारनाद घोषव्यंजन' भी कहते हैं।

११०. घोषवत् व्यंजन—घोषव्यंजनों ही को 'घोषवत्व्यंजन' भी कहते हैं। (नं० १०८)

नोट—सर्व स्वर 'घोषस्वर' हैं।

१११. घोषवर्ण (Soft letters)—२० घोषव्यंजनों और सर्व स्वरों को 'घोषवर्ण' कहते हैं।

११२. महाप्राण व्यंजन (Aspirates)—जिन १० व्यंजनों में हकार की ध्वनि का समावेश है उन्हें और ४ ऊष्म व्यंजनों को महाप्राण व्यंजन कहते हैं। वे यह हैं—ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, श, ष, स, ह।

११३. अल्पप्राण व्यंजन (Unaspirated consonants)—१४ महाप्राण व्यंजनों को छोड़ कर शेष १९ व्यंजन 'अल्प प्राणव्यंजन' कहाते हैं। सर्व स्वर भी 'अल्पप्राण' हैं।

११४. अल्पप्राणवर्ण (Unaspirated letters)—१९ अल्पप्राण व्यंजनों और सर्व स्वरों को 'अल्पप्राणवर्ण' कहते हैं।

११५. उदात्त (Acutely accented vowel)—जब कोई स्वरवर्ण मुख के तालु आदि स्थान के ऊपरी भाग द्वारा ऊँचे स्वर से बोला जाय तो उसे 'उदात्त' या 'उदात्त प्रयत्नोच्चरितस्वर' कहते हैं।

११६. उदात्त प्रयत्न (Acute effort)—जिस बाह्यप्रयत्न से उदात्तस्वर बोला जाय उसे 'उदात्त प्रयत्न' कहते हैं ।

११७ अनुदात्त (Gravely accented vowel)—जब कोई स्वरवर्ण मुखके तालु आदि स्थान के नीचेभाग द्वारा धीमे स्वरसे बोला जाय तो उसे 'अनुदात्त' या 'अनुदात्तप्रयत्नो ऽचरितस्वर' कहते है ।

११८. अनुदात्तप्रयत्न (Grave effort)—जिस बाह्यप्रयत्न से अनुदात्तस्वर बोला जाय उसे 'अनुदात्तप्रयत्न' कहते हैं ।

११९ स्वरित (Circumflexively accented Vowel)-जब कोई स्वरवर्ण उदात्तप्रयत्नसे प्रारम्भ होकर अनुदात्त प्रयत्न पर समाप्तहो तो उसे 'स्वरित' या 'स्वरितप्रयत्नोच्चरितस्वर' कहते हैं।

१२०. स्वरित प्रयत्न (Circumflexive effort)—जिस बाह्यप्रयत्न से स्वरित स्वर बोला जाय उसे 'स्वरित प्रयत्न' कहते है ।

नोट—अ इ उ ऋ, इन ४ स्वरों में से प्रत्येक स्वर ह्रस्व दीर्घ, प्लुत भेदों से तीन तीन प्रकार के है और ए ऐ ओ औ, इन चारों में से प्रत्येक स्वर दीर्घ और प्लुत भेदों से दो दो प्रकार के हैं। और ऌ स्वर भी ह्रस्व और प्लुत भेदों से दो ही प्रकार का है । अत. उच्चारण के बाह्यप्रयत्न की अपेक्षा प्रत्येक भेद का स्वर उदात्त, अनुदात्त और स्वरित होने से अ इ उ ऋ में से प्रत्येक वर्ण के नव नव भेद और ए ऐ ओ औ और ऌ में से प्रत्येक वर्ण के छह छह भेद हैं। ये सर्वही सानुनासिक और निरनुनासिक हो सकने से अ इ उ ऋ में से प्रत्येक स्वर के १८ भेद और ए ऐ ओ औ और ऌ में से प्रत्येक स्वर के १२ भेद हो जाते हैं। और इस रीति से सर्व स्वरों के (अनुस्वार और विसर्ग को छोड़ कर १४ स्वरों के) सर्व उच्चारण संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में १३२ (१८×४+१२×५=७२+६०= १३२) प्रकार के हैं।

१२१. (१) विवृतवर्ण
१२२. अस्पृष्टवर्ण
} (Letters of open effort)—जिन वर्णों के उच्चारण के अभ्यन्तर प्रयत्न में वागिन्द्रिय विस्तृत और खुली रहती है वे 'विवृतवर्ण' है । सर्व स्वर 'विवृतवर्ण' हैं । जिह्वा इनके उच्चारण के प्रयत्न में स्थानों को स्पर्श नहीं करती, इसी लिये इन्हें 'अस्पृष्टवर्ण' भी कहते हैं।

१२३ (२) संवृत वर्ण
१२४ स्पृष्ट वर्ण
} (Letters of touching effort)—जिन वर्णों के उच्चारण के अभ्यन्तर प्रयत्न में वागिन्द्रिय के अङ्ग सकुचित और छिपे रहते हैं और जिह्वा जिनके उच्चारण में स्थानो को स्पर्श करती है ऐसे २५ स्पर्श वर्णों या व्यंजनों को 'संवृतवर्ण' या 'स्पृष्ट वर्ण' कहते हैं।

१२५ (३) सवृत विवृतवर्ण (Letter of both touching & open efforts or Contracted letter)—ह्रस्व अ संवृत विवृत अर्थात् उभय प्रयत्नो वर्ण है। यह उच्चारण में संवृत प्रयत्नो और साधन में विवृत प्रयत्नो है।

१२६. (४) ईषत् विवृत वर्ण (Letters of slightly open effort)—जिन वर्णों के

१४१. (२) निरनुनासिक वर्ण ⎫ (Non-nasals)—अनुनासिक वर्णों के अतिरिक्त शेष सर्व
१४२. अननुनासिक वर्ण ⎭ ही वर्ण "निरनुनासिक" या "अननुनासिक" हैं।

१४३. रजात विसर्ग—संस्कृत भाषा में रकार से बने हुए विसर्ग को 'रजातविसर्ग' कहते हैं। जैसे—निः, पुनः, अन्तः, इत्यादि। और सकार को रकार में बदल कर बने हुए विसर्ग को "सजात विसर्ग" कहते हैं। जैसे—रामः, अतः, वस्तुतः, इत्यादि॥

१४४.-१४७. चन्द्रबिन्दु (Pointed Halfmoon-mark)—किसी अक्षर के ऊपर अनुनासिक स्वरोच्चारण के चिह्नरूप जो बिन्दुसहित अर्द्ध चन्द्राकार चिह्न ऐसा ँ लगाया जाता है उसे 'चन्द्रबिन्दु' बोलते हैं। चन्द्रबिन्दु ही को १४५. अर्द्धचन्द्रबिन्दु, १४६. अर्द्ध चन्द्राकार, और १४७. अर्द्धानुनासिक चिह्न भी कहते हैं।

१४८. रेफ (Pre-Compound r)—जब स्वर रहित र् अगले व्यंजन से मिलता है तो उसे अगले व्यंजन के ऊपर ऐसे र्‍ आकार में लिखा जाता है। र् के इसी आकार को 'रेफ' बोलते हैं।

१४९. संयुक्ताक्षर ⎫ (Compound Letter)—जब किसी शब्द में स्वर रहित
१५०. संयोगीअक्षर ⎭ व्यंजन के आगे कोई दूसरा व्यंजन आता है तो पहिले व्यंजन को अगले व्यंजन से मिला दिया जाता है। ऐसे दो या अधिक व्यंजनों के मेल से जो अक्षर बनता है उसे 'संयुक्ताक्षर' या 'संयोगी अक्षर' कहते हैं।

१५१. द्वित्व (Duality)—जब किसी शब्द में एक व्यंजन का संयोग उसी व्यंजन से होता है तो इस संयोग या मेल को 'द्वित्व' कहते हैं। जैसे न्न, प्प, त्त, च्छ, द्द इत्यादि।

१५२. बारहखड़ी ⎫ (Duodecimulation of vowels)—१६ स्वरों में से ऋ ॠ ऌ ॡ,
१५३. द्वादशाक्षरी ⎭ इन चार अक्षरों को छोड़ कर शेष १२ स्वरों को प्रत्येक व्यंजन के आगे मिलाने से प्रत्येक व्यंजन के जो १२,१२ रूप हो जाते हैं उन्हें 'बारहखड़ी' या 'द्वादशाक्षरी' कहते हैं जैसे—क का कि की कु कू के कै को कौ कं कः।

बारहखड़ी संयुक्ताक्षरों के साथ भी १२ स्वर जोड़ कर बनाई जाती है। जैसे—क्ष क्षा, क्षि क्षी, क्षु क्षू क्षे क्षै क्षो क्षौ क्षं क्षः।

१५४. तलबिन्दुवर्ण (Under pointed letters)—उर्दू और अँगरेज़ी शब्दों के कुछ अक्षरों का यथार्थ उच्चारण दिखाने के लिये हमें जिन हिन्दी अक्षरों के नीचे एक बिन्दु लगाना पड़ता है उन्हें 'तलबिन्दुवर्ण' कहते हैं। ऐसे १८ वर्ण हैं—अ़ आ़ इ़ ई़ उ़ ऊ़ ए़ ऐ़ ओ़ औ़, क़ ख़ ग़ ज़ झ़ ड़ ढ़ फ़। जैसे—عدالت - عادت - علاج - عید - عرس - عود - عوض - عینک - عورت - قالین - خدا - باغ - زمین - ژالہ - پڑا - پڑھنا - فارسی

इन उर्दू शब्दों को हिन्दी में क्रम से इस प्रकार लिखेंगे—अ़दालत, आ़दत, इ़लाज, ई़द, उ़र्स, ऊ़द, ए़वज़, ऐ़नक, औ़रत, क़ालीन, ख़ुदा, बाग़, ज़मीन, झ़ाला (ओला), पड़ा, पढ़ना, फ़ारसी, इत्यादि। इसी प्रकार Suez, prize, size, division, fees, officer, professor, phosphorus, आदि अँगरेज़ी शब्दों को स्वेज़, प्राइज़, साइज़, डिविज़न, फ़ीस, अफ़सर, प्रोफ़ेसर, फ़ास्फ़ोरस, इत्यादि।

१५५. अर्द्धचन्द्र (Half-moon mark)--ऐसे ◡ चिह्न को 'अर्द्धचन्द्र' कहते हैं। यह चिह्न कुछ अँगरेज़ी शब्दों के किसी किसी स्वर का ठीक उच्चारण दिखाने के लिये हिन्दी स्वर के ऊपर लगाया जाता है। जैसे Lord, Ball, शब्दों को हिन्दीमें लॉर्ड, बॉल, इस प्रकार लिखेंगे।

१५६. अर्द्धचन्द्राङ्कित स्वर (Half moon marked vowel)--हिन्दी में लिखे गए अँगरेज़ी शब्द के जिस स्वर पर अर्द्धचन्द्र चिह्न लगाया गया हो उसे "अर्द्धचन्द्राङ्कितस्वर" कहते हैं।

१५७. द्विस्पृष्टवर्ण--जो अक्षर जिह्वा के अग्रभाग को उलटा कर या तालु के पिछले भाग में लगाने से बोले जाते हैं वे 'द्विस्पृष्टवर्ण' तलविन्दु ड़ और ढ़, यह दो अक्षर हैं।

१५८. आघात (Accent)--किसी शब्द के उच्चारण में उसके किसी अक्षर पर अधिक बल देने की क्रिया को 'आघात' कहते हैं। जैसे--'अर्थात्' शब्द में 'थो' के 'आ' स्वर पर स्वराघात है। 'की' शब्द जब सम्बन्धबोधक कारक की विभक्ति होता है तो इस पर कोई बल देने की आवश्यक्ता नहीं, परन्तु जब यही शब्द 'कर' धातु के सामान्य-भूतकालका स्त्रीलिङ्ग होता है तो इसके ई स्वरको अधिक बल देकर उच्चारण किया जाता है।

१५९. स्वराघात--'आघात' ही को स्वराघात भी कहते हैं।

१६०. विश्लेष् (Disjunction)--किसी शब्द के मिले हुए अक्षरों को क्रमसे अलग २ करनेको 'विश्लेष्' कहते हैं। जैसे, व्याख्यान = व्+य्+आ+ख्+य्+आ+न्+अ।

१६१. सन्धि (Joining or Conjunction of Let' अक्षरों के मिल जाने को या मिलकर विकृत रूप हो जाने को 'सन्धि' कहते

१६२. (१) स्वरसंधि (Conjunction of Vowel 'स्वरसन्धि' कहते

१६३. अच्सन्धि--

१६४. दीर्घस्वरसन्धि ह्रस्वदीर्घ, या दीर्घ तो ऐसे मेल को आत्मा = परमात्मा, इन्द्र = कवीन्द्र, क. इत्यादि।

१६५. दीर्घसन्धि--दी

१६६. गुण--अ या आ के ए, ओ, अ को 'गुण' कहते

१६७. गुण सन्धि--'अ' या 'अ "ओ", और ऋ के मेलसे

महेश; पर + उपकार = परोपकार, जल + ऊर्मि = जलोर्मि, महा + उत्सव = महोत्सव, गङ्गा + ऊर्मि = गङ्गोर्मि, सप्त + ऋषि = सप्तर्षि, महा + ऋषि = महर्षि; इत्यादि।

नोट—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, और ऌ के विकृतरूप अर्, ऐ, औ, आर्, आल् को भी 'गुण' कहते हैं।

१६८. वृद्धि—'अ' या 'आ' के साथ अगले ए ऐ ओ औ में से किसी के मेल से होने वाले विकार या आ, ऐ, औ, को 'वृद्धि' कहते हैं।

१६९. वृद्धि सन्धि—अ या आ के साथ अगले ए या ऐ के मेल से 'ऐ', और ओ या औ के मेल से "औ" हो जाने को "वृद्धिसन्धि" कहते हैं। जैसे एक + एक = एकैक, परम + ऐश्वर्य = परमैश्वर्य, सदा + एव = सदैव, महा + ऐश्वर्य = महैश्वर्य; सुन्दर + ओदन = सुन्दरौदन, वन + औषधि = वनौषधि, महा + ओजस = महौजस, महा + औदार्य = महौदार्य; इत्यादि।

नोट—अ या आ के साथ अ या आ के मेल से 'आ', इ या ई के मेल से 'ऐ', उ या ऊ के मेल से औ, ऋ या ॠ के मेल से आर् और ऌ के मेल से आल् हो जाने को भी 'वृद्धिसन्धि' कहते हैं।

१७०. यण—इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ के साथ अगले किसी असवर्ण (विजातीय) स्वर के मेल से होने वाले विकार को 'यण' कहते हैं।

१७१. यण सन्धि } किसी असवर्ण स्वर के मेल से पूर्व के इवर्ण (इ ई)
१७२. यादि सन्धि } को य्, उवर्ण (उ ऊ) को व्, और ऋवर्ण (ऋ ॠ) को र् हो जाने को 'यणसन्धि' या 'यादिसन्धि' कहते हैं। जैसे—यदि + अपि = यद्यपि, इति + आदि = इत्यादि, प्रति + उपकार = प्रत्युपकार; तदा + अर्पण = तदर्पण, देवी + आगम = देव्यागम, नी + ऊन = न्यून; मनु + अन्तर = मन्वन्तर, सु + आगत = स्वागत, अनु + एषण = अन्वेषण; पितृ + अनुमति = पित्रनुमति, पितृ + आनन्द = पित्रानन्द, पितृ + उपदेश = पित्रुपदेश; इत्यादि।

१७३. अयादिसन्धि—ए, ऐ, ओ, औ के साथ अगले किसी भिन्न स्वरके मेल से उनके स्थान में क्रमसे अय्, आय्, अव् आव् हो जानेको 'अयादिसन्धि' कहते हैं। जैसे—ने + अन = नयन, ने + अक = नायक, पो + अन = पवन, पौ + अक = पावक; पो + इत्र = पवित्र, गो + ईश = गवीश, नौ + इक = नाविक, भौ + उक = भावुक, इत्यादि।

१७४. (२) व्यंजनसन्धि (Conjunction of consonants)—व्यंजन के साथ अगले व्यंजन के मेल को अथवा व्यंजन के साथ अगले स्वर के मेल को 'व्यंजनसन्धि' कहते हैं। जैसे—दिक् + गज = दिग्गज, अच् + अन्त = अजन्त, षट् + आनन = षडानन, वाक् + मय = वाङ्मय, जगत् + नाथ = जगन्नाथ, जगत् + ईश = जगदीश, सत् + जन = सज्जन, सत् + शास्त्र = सच्छास्त्र, सम् + तोष = सन्तोष, भूष + अन = भूषण, नी + सिद्ध = निषिद्धि, प्राणिन + मात्र = प्राणिमात्र, इत्यादि।

१७५. (३) विसर्ग सन्धि (Conjunction of Visarg)—विसर्ग के साथ अगले स्वर या व्यंजन के मेल को 'विसर्ग सन्धि' कहते हैं। जैसे—निः + चल = निश्चल, धनुः + टङ्कार

= धनुष्टङ्कार, निः+सन्देह = निस्सन्देह, अधः+गति = अधोगति, निः+आशा = निराशा, निः+रस = नीरस, अतः+एव = अतएव, इत्यादि। (नं० ७८)

१७६. शब्द (Sound, Word)--कान से सुनाई दी जाने वाली प्रत्येक ध्वनि को 'शब्द' कहते हैं। व्याकरण की परिभाषा में साक्षर अर्थबोधक ध्वनि को 'शब्द' कहते हैं। [नं० १८२]

१७७. (१) निरर्थक शब्द [Inarticulate sound or Insignificant sound]—अर्थ रहित शब्दों को 'निरर्थक शब्द' कहते हैं। जैसे मेघ की गर्जना, ईंट पत्थर आदि के गिरने टकराने आदि के शब्द, तथा ऐसे शब्द जो लिखे जा सकने पर भी उनका अर्थ कुछ न लग सके। जैसे--यर्व, कलग, समृकर, इत्यादि।

१७८. १. निरक्षर निरर्थक शब्द--जो शब्द न तो अक्षरों द्वारा लिखे जासकें और न उनका कुछ अर्थ ही लग सके। जैसे--मेघगर्जना, बिजली की कड़क, इत्यादि।

१७९. २. साक्षर निरर्थक शब्द--जो शब्द अक्षरों द्वारा लिखे तो जा सकें, परन्तु उनका अर्थ कुछ न हो। जैसे--लक्रू, मखग, इत्यादि।

१८०. (२) सार्थक शब्द (Articulate sound, significant word or sound)--अर्थ बोधक शब्दों को 'सार्थक शब्द' कहते हैं।

१८१. १. निरक्षर सार्थक शब्द--जो ध्वन्यात्मक शब्द अक्षरों द्वारा तो प्रकट न किये जा सकें, किन्तु कुछ न कुछ अर्थसूचक हों उन्हें 'निरक्षर सार्थक शब्द' कहते हैं। जैसे तारबर्क़ी के शब्द, पशुओं को हंकाने, कुत्ता बिल्ली आदि को भगाने या पास बुलाने आदि के या अन्यान्य अनेक प्रकार के समस्या बोधक मुखादि शरीरावयवों द्वारा उत्पन्न किये गये निरक्षरी शब्द जिन्हें सुनकर उच्चारण करने वाले के आशय को अन्य प्राणी समझ सकें।

१८२. २. साक्षर सार्थक शब्द--एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई सार्थक ध्वनि को 'साक्षर सार्थक शब्द' कहते हैं। व्याकरण में केवल इसी प्रकार के शब्दों पर विचार किया जाता है।

१८३. ध्वन्यात्मक शब्द [Sound]—सर्व प्रकार के नाद, निनाद या आहट को जो कानों द्वारा सुने जासकें "ध्वन्यात्मक शब्द" कहते हैं।

१८४. निपात शब्द [Irregular words or Exceptional words]--जो शब्द व्याकरण के नियमों से सिद्ध न हों वे 'निपात शब्द' कहलाते हैं।

१८५. तद्भव शब्द [Corrupted form of words]--हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत या अन्य भाषा के किसी शब्द के परिवर्तित या अपभ्रंश रूप को "तद्भव" कहते हैं। जैसे--काठ, यह शब्द काष्ठ का अपभ्रंश है। घी, यह शब्द घृत का अपभ्रंश है। लालटेन, बोतल, पतलून, बकस, इत्यादि अँग्रेज़ी शब्द "लेन्टर्न" (Lantern) बॉटल [Bottle] पैन्टैलून्ज़, बॉक्स [Box], आदि के अपभ्रंश हैं। इत्यादि॥

१८६. तत्सम् शब्द [Identical words]—हिन्दीमें [या किसी भाषामें] प्रयुक्त अन्य किसी भाषा के उस शब्द को 'तत्सम्' कहतेहैं जिसके रूप और बनावटमें किसी प्रकारका अन्तर न

पड़ा हो और हिन्दी भाषा के सर्व नियमों का अनुकरण हिन्दी के अन्य शब्दों के समान करे। जैसे—स्कूल, कोट, स्लेट, पेंसिल, जज, गवर्नर, सोडा, कम्पनी, सोसाइटी, चिमनी, इत्यादि अनेक अँगरेज़ी शब्द, और किताब, क़लम, काग़ज़, गुलदस्ता, पायजामा, दस्ताना, इत्यादि अनेक अरबी फ़ारसी शब्द तथा अगणित संस्कृत प्राकृत आदि भाषाओं के शब्द लिंग, वचन आदि में अपनी मूल भाषा के नियमों का अनुकरण न करके हिन्दी भाषा के नियमों ही का अनुकरण करते हैं। अतः यह सर्व शब्द "तत्सम" है।

१८७. प्रकृति (A Root, or Original form)—क्रिया का वह मूल रूप जिस में कोई प्रत्यय जुड़ने से उसका रूपान्तर और कुछ अर्थान्तर भी हो जाय। (नं० २००,२०१, २७५—२८०)

१८८. धातु—'प्रकृति' ही को धातु भी कहते हैं। (नं० १८७)

१८९. पर्याय (Synonyms)—समान अर्थ वाले शब्दों में से प्रत्येक शब्द को परस्पर एक दूसरे का 'पर्याय' या 'पर्याय वाची शब्द' कहते हैं। जैसे—चक्षु, नेत्र, नयन, लोचन, आँख। श्लाघा, यश। प्रशंसा, स्तुति, इत्यादि॥

१९०. विरोधी शब्द (Antonyms)—जिन शब्दों का अर्थ परस्पर एक दूसरे से विरुद्ध या विपरीत हो उन्हें 'विरोधी शब्द' कहते हैं। जैसे-गुण दोष, पुण्यपाप, सजातीय विजातीय, उपर्युक्त निम्नोक्त, शीत उष्ण, कोमल कठोर, भलाबुरा, ऊँचा नीचा, सबल निबल, अँधेरा उजाला, इत्यादि।

१९१. शब्दांश (A Syllable)—दो या अधिक अक्षरों से बने हुए शब्द के किसी विभाग को 'शब्दांश' कहते हैं, पर व्याकरण की परिभाषा में जो ध्वनि स्वयं कुछ अर्थ प्रकट न करे किन्तु अन्य शब्द से मिल कर सार्थक हो उसे 'शब्दांश' कहते हैं। जैसे—स, अप, ता, पन, वान, इत्यादि। (उपसर्ग और प्रत्यय प्रायः शब्दांश ही होते हैं)।

१९२. उपसर्ग (Pre-fixes)—जो शब्दांश किसी शब्द के पहिले जोड़े जाने से अपना अर्थ प्रकट करते हैं उन्हें 'उपसर्ग' कहते हैं। जैसे 'सविस्तार' शब्द में स; अपकीर्त्ति में अप, इत्यादि। (नं० ३०७)

१९३. प्रत्यय (Affixes)—जो शब्दांश किसी शब्द के आगे जोड़े जाने से अपना अर्थ प्रकट करते और उस शब्द के रूप और अर्थ में कुछ भेद कर देते हैं उन्हें 'प्रत्यय' कहते हैं। जैसे—शुद्धता, बचपन, दयावान, इन शब्दों में क्रम से ता, पन, वान, प्रत्यय हैं। (जिन शब्दों में प्रत्यय जोड़े जाते हैं उन्हें 'प्रकृति' कहते हैं)। (नं० २००, ३०८)

१९४ चरमप्रत्यय या विभक्ति (Terminal Affixes, or Case-Terminations)-जिन प्रत्ययों के पीछे अन्य कोई प्रत्यय न आवें उन्हें 'चरमप्रत्यय' कहते हैं। सर्व विभक्तियां चरमप्रत्यय हैं। (नं० ३०६, ३३३)

१९५. अचरमप्रत्यय (A Suffix)—जिन प्रत्ययों के पीछे अन्य कोई प्रत्यय आने न आने का नियम नहीं उन्हें 'अचरमप्रत्यय' कहते हैं। विभक्तियों के अतिरिक्त शेष प्रत्यय 'अचरमप्रत्यय' हैं।

१९६. कृत्प्रत्यय (Verbal Affixes)—क्रिया के मूलरूप (धातु) के आगे जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं उन्हें 'कृत्प्रत्यय' कहते हैं।

१९७. कृदन्त (Verbal Derivatives)—जो शब्द किसी क्रिया के मूलरूप (धातु) में किसी प्रत्यय (कृत्प्रत्यय) के जोड़ने से बनते हैं उन्हें 'कृदन्त' कहते हैं। (नं० १९६, २०९, २१७, २१८, २१९)।

(१) कृदन्तनाम (Verbal Noun, or Gerund)—जो कृदन्त "क्रियावाचकसंज्ञा" या 'क्रियाजन्यभाववाचकसंज्ञा' का काम दें। (न. २२६)

(२) कृदन्तविशेषण (Verbal Adjectives)—जो कृदन्त क्रियार्थक विशेषण का काम दें। (न. २५८)

१९८. तद्धित या तद्धितशब्द (Nominal Derivatives)—धातुओं को छोड़ कर अन्य शब्दों में कोई प्रत्यय जोड़ने से जो शब्द बनते हैं उन्हें 'तद्धित' कहते हैं। जैसे— मित्रता, लघुत्व, शैव, खटिया, यादव, धनवान, बली, ममता, सरलता, प्यासा, मानी, लुहार, धनी, निकटता, इत्यादि। (न. २१६, २१७, २१८, २२१.....)

१९९. तद्धितप्रत्यय (Nominal Affixes)—जिन प्रत्ययों के लगाने से तद्धित शब्द बनते हैं उन्हें 'तद्धितप्रत्यय' कहते हैं।

२००. प्रकृति (Original or Crude Form of a Word)—जिन शब्दों में प्रत्यय जोड़े जाते हैं उन्हें (अथवा प्रत्यय युक्त शब्दों के प्रत्ययरहित भाग को) 'प्रकृति' कहते हैं। (न. १८७, १९३)

२०१. अङ्ग—प्रकृति ही को 'अङ्ग' भी कहते हैं। (नं० १८७, २००)

२०२. शब्दवर्गीकरण (Classification of Words)—शब्दों की भिन्न २ जातियां बताने को 'शब्दवर्गीकरण' कहते हैं।

२०३. शब्दरूपान्तर (Declension or Inflection of Words)—अर्थ में कुछ हेर फेर करने के लिये शब्दके रूपमें जो उपसर्ग या प्रत्यय लगाकर कुछ हेरफेर किया जाता है उसे 'शब्दरूपान्तर' कहते हैं। (नं० १९२, १९३, ३१२ –३९६)

२०४. रूपसाधन—शब्दरूपान्तर ही को 'रूपसाधन' भी कहते हैं।

नोट—संज्ञाओं में लिंग, वचन और कारक के कारण, सर्वनामों में वचन, पुरुष और कारक के कारण, कुछ विशेषणों में लिंग, वचन, और उनकी तुलनात्मक आदि अवस्था के कारण और क्रियाओं में वाच्य, काल, रीति या अर्थ, पुरुष, लिंग और वचन के कारण रूपान्तर होता है। (नं० ३१२.....)

२०५. शब्द रचना (Word Formation)—एक शब्द से कोई दूसरा शब्द बनाने की प्रक्रिया का 'शब्द रचना' कहते हैं।

२०६. शब्द व्युत्पत्ति (Tracing to the Root or Thorough proficiency of a Word)—व्याकरण शास्त्र के आधार पर किसी शब्द के विशेष अर्थ जानने की शक्ति या विधि विशेष को या धातु को खोजने की क्रिया को "शब्द व्युत्पत्ति" कहते हैं।

२०७. शब्द प्रयोग (Word Application)—वाक्य में शब्दों को यथा स्थान रखना 'शब्द प्रयोग' कहलाता है।

२०८. शब्द भेद (Parts of Speech)—प्रयोग के अनुसार शब्दों की भिन्न भिन्न जातियों

को 'शब्द भेद' कहते हैं। वाक्य में प्रयोग करने की अपेक्षा शब्दों के मूल भेद ५ हैं—(१) संज्ञा (२) सर्वनाम (३) विशेषण (४) क्रिया (५) अव्यय।

रूपान्तर के अनुसार शब्द के मूल भेद दो हैं—(१) विकारी शब्द (२) अविकारी शब्द।

व्युत्पत्ति के अनुसार शब्दों के तीन भेद हैं—(१) रूढ़ि शब्द (२) यौगिक शब्द (३) योग-रूढ़ि शब्द।

२०९. विकारी शब्द (Declinable Words)—जिन शब्दों के रूप में कोई विकार या परिवर्तन होता है उन्हें 'विकारी शब्द' कहते हैं। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, और क्रिया, यह चार विकारी शब्द हैं। (नं २०८, २१९ २३१, २४२ २६०)

२१० अविकारी शब्द (Indeclinable Words)—जिन शब्दों के रूप में कोई विकार या परिवर्तन नहीं होता उन्हें 'अविकारी शब्द' कहते हैं। किसी किसी के अतिरिक्त सर्व अव्यय अविकारी शब्द हैं। (नं २९४, ३१०)

२११. रूढ़ि शब्द (Primitives)—जिन शब्दों की व्युत्पत्ति न हो, या हो भी तो उन का व्युत्पत्ति से कुछ सम्बन्ध न हो, उन्हें 'रूढ़ि शब्द' कहते हैं। जैसे—पुस्तक, गाय, बकरी, नाक, कान, बालक, स्त्री, यह, तू, लाल, पीला, ऊपर, यहां, अब, जब, इत्यादि।

२१२. यौगिक शब्द (Derivatives)—जिन शब्दों की व्युत्पत्ति हो सके और उनका अर्थ व्युत्पत्ति के अनुकूल ही हो उन्हें 'यौगिक शब्द' कहते हैं। ऐसे शब्द प्रायः धातु और प्रत्यय या उपसर्ग के योग से बनते हैं। जैसे—सेवक, लड़कपन, उपवन, कतरनी, प्रति दिन, गयो, दौड़ा, लेखता, खाता, जाओ, देखो, इत्यादि। (नं १८८, १९२ १९३)

अपत्य बोधक, लघुताबोधक, कर्तृबोधक, शब्द प्राय. यौगिक शब्द होते हैं। (नं० २१६, २१७ २१८)

२१३ पुनरुक्त यौगिक शब्द (Repeated or double Derivatives)—जो शब्द दो समान यौगिक शब्दों या समान ध्वनि वाले शब्दों के योग से बनें। जैसे—घरघर, मारामार, कारकूं, धूमधाम, खचाखच।

२१४. अनुकरण सूचक यौगिक शब्द (Imitative Derivatives)—जो शब्द किसी पदार्थ की यथार्थ या कल्पित ध्वनि को लेकर बनें। जैसे—खटाखट, चूंचूं, छमाछम, गड़गड़, तुनतुन, रींरीं, चींचीं, भिनभिन, इत्यादि॥

२१५ योग रूढ़ि शब्द (Derived Primitives, or Words having an etymological as well as special or Conventional meaning)—जिन शब्दों की व्युत्पत्ति तो हो सके परन्तु उनका अर्थ व्युत्पत्ति से किसी एक ही अंश में मिले, सर्वथा न मिले उन्हें 'योगरूढ़ि शब्द' कहते हैं। जैसे—जलज, पंकज, हिमालय, मुरलीधर, लम्बोदर, पीताम्बर, अँगरखा, इत्यादि।

२१६. अपत्यबोधक शब्द (Patronymics)—जो यौगिक शब्द अपने मूल शब्द के अर्थ से उसकी सन्तान या उसका सम्प्रदायी, वा अनुयायी आदि अर्थ के सूचक हों उन्हें "अपत्यबोधक शब्द" कहते हैं। जैसे—वासुदेव (वसुदेव का पुत्र), पाण्डव (पाण्डु के पुत्र), यादव (यदु की सन्तान), बौद्ध (बुध सम्प्रदाय के लोग), ईसाई (ईसा का अनुयायी), वैष्णव (विष्णु का भक्त), शैव (शिव का पूजक) इत्यादि॥

२१७. लघुतावोधक शब्द (Diminutives)--जो यौगिक शब्द अपने मूल शब्द के अर्थ से छोटापन, हलकापन, निरादरता, नाचता, आदि अर्थ के सूचक हों उन्हें "लघुतावोधक शब्द" कहते हैं। जैसे--लुंटिया (छोटा लोटा), खटिया (छोटी या हलकी खाट) पलँगड़ी, लड़कवा सुनट्टा, इत्यादि।

२१८. कर्तृबोधक शब्द (Words denoting Doer or Agent)-जो यौगिक शब्द किसी कार्य के कर्त्ता सूचक हों उन्हें 'कर्तृबोधक शब्द' कहते हैं। जैसे-भिकारी (भीक माँगने वाला), सेवक (सेवा करने वाला), मानी, दानी, ग्राहक, वाहक, परीक्षक, लुहार, सुनार, धोवी, इत्यादि॥

२१९. संज्ञा (Noun, or Substantive)—संज्ञा उस विकारी शब्द को कहते हैं जिससे सृष्टि की किसी वस्तु, या गुण आदि का नाम सूचित हो। जैसे--पुस्तक, सेवक, जलज, राम, गङ्गा, हिमालय, हिन्दुस्थान, जीव, भलाई, लाली, गणित, वल, धर्म, गुण, दोष, इत्यादि।

संज्ञा के मूल भेद दो हैं--(१) पदार्थ वाचक संज्ञा (२) भाववाचक संज्ञा।

२२०. (१) पदार्थवाचक संज्ञा (Concrete-Noun)--जिस संज्ञा से किसी ऐसे पदार्थ या पदार्थ समूह का बोध हो जो सृष्टि में स्वयं अपनी कोई सत्ता रखता हो, अर्थात् जिस की सत्ता किसी अन्य एदार्थ के आश्रित न हो उसे 'पदार्थवाचक संज्ञा' कहते हैं। जैसे--पुस्तक, राम, जल, वायु, ब्रह्म, सभा, बाग इत्यादि। (नं. २२२, २२३)

२२१. (२) भाव वाचक संज्ञा (Abstract-Noun)--जिस संज्ञा से किसी ऐसी वस्तु या गुण आदि का बोध हो जिसकी सत्ता किसी अन्य पदार्थ के आश्रित ही रहे।
जैसे--मित्रता, भलाई, लाली लिखावट, गणित, बल, ज्ञान, सर्वज्ञता, धर्म, पुण्य, पाप, इत्यादि। (नं. २२४--२२६)

२२२. (१) व्यक्ति वाचक संज्ञा (Proper Noun)--जिस पदार्थ वाचक संज्ञा से किसी एक ही पदार्थ या पदार्थसमूह का बोध हो उसे 'व्यक्तिवाचक संज्ञा' कहते हैं। जैसे--राम, पद्मपुराण, गङ्गा, हिमालय, काशी, हिन्दुस्थान, महामंडल, वैदेही, वसुदेव, गङ्गाजल। इत्यादि।

२२३. (२) जातिवाचक संज्ञा (Common Noun)—जिस पदार्थ वाचक संज्ञा से उसकी जाति के सम्पूर्ण पदार्थों का बोध हो उसे "जातिवाचक संज्ञा" कहते हैं।
जैसे--पुस्तक, मनुष्य, नदी, पहाड़, नगर, देश, जल, स्वर्ण, पिता, पौत्र, जैन, शैव, खटिया, सेवक, लेखक, मन्त्री, सभा, इत्यादि।

२२४. जातिवाचक संज्ञाजन्य भाववाचक संज्ञा (Abstract Noun made by Common Noun)--जो भाववाचक संज्ञा किसी जातिवाचक संज्ञा से बनी हो। जैसे--लड़कपन, मित्रता, राज्य, दासत्व, पौरुष, इत्यादि।

२२५. विशेषणजन्यभाववाचकसंज्ञा (Abs. Noun made by Adj.)--जो भाववाचकसंज्ञा किसी विशेषण से बनी हो। जैसे—भलाई, मिठास, लाली, गरमी, इत्यादि।

२२६. क्रियाजन्यभाववाचकसंज्ञा (Verbal-Noun, or Gerund)--जो भाववाचकसंज्ञा किसी क्रिया से बनी हो। जैसे--लिखावट, लेख, पढ़ाई, दौड़, नाच, नाचकूद, पढ़ना,

पढ़नालिखना, खानपान, खानापीना, लेनदेन, भागदौड़, जांच, जांच पड़ताल, तौल, नाप, नापतौल, इत्यादि।

२२७ अव्ययजन्यभाववाचक संज्ञा (Abs Nonn made by Indeclinables)—किसी अव्यय से बनी हुई संज्ञा को 'अव्ययजन्यभाववाचक संज्ञा' कहते हैं। जैसे-नित्यत्व, निकटता, समीपता, तुल्यता, अनुकूलता, विपरीतता, प्रतिकूलता, विरुद्धता, दूरत्व, दूरी, पृथक्त्व, शीघ्रता, यथार्थता, अगाई, समानता, धिक्कार, इत्यादि। (न. २९४)

२२८. विद्या या कलाबोधक संज्ञा (Names of Science or Art)—जो भाववाचकसंज्ञा किसी विद्या या कला का नाम हो। जैसे-वैद्यक, ज्योतिष, गणित, व्याकरण, या आलेख्य, हस्तलाघव, सूत्रकर्म, सूचीकर्म, इत्यादि।

२२९. मूलभाववाचक संज्ञा (Original Abs. Nouns)—जो भाववाचक संज्ञाएँ किसी अन्य संज्ञा या विशेषण, या क्रिया से न बनी हों और न विद्याबोधक ही हों वे सर्व "मूल भाववाचकसंज्ञा" हैं। जैसे—पुण्य, पाप, धर्म, गुण, शक्ति, हर्ष, शोक इत्यादि।

२३० समानाधिकरणसंज्ञा (Nouns in Apposition)—दो साथ साथ आने वाली एक ही कारक की संज्ञाओं में से जब एक संज्ञा दूसरी संज्ञा के अर्थ को केवल स्पष्ट करने के लिये आवे तो उनमें से प्रत्येक को (अथवा दूसरी को पहिली की) "समानाधिकरण-संज्ञा" कहते हैं। जैसे—राजा भोज, चौधरी रामसिंह, कवि कालिदास, भानु कवि, प्रह्लाद भक्त, अगस्त्यमुनि, शिवमूर्ति पुरोहित, रामानन्द मन्त्री, रामसेवक माली, रामचंद्र वकील, इत्यादि।

किसी सर्वनाम के आगे आने वाली ऐसी संज्ञा को भी "समानाधिकरणसंज्ञा" कहते हैं। जैसे—मैं रामलाल, मुझ रामसिंह ने, तुझ रामचरण को हम रामलाल, रामसिंह और रामचरण ने, इत्यादि।

२३१. सर्वनाम (Pronoun)—'सर्वनाम' वह विकारी शब्द है जिनका प्रयोग पूर्वापर सम्बन्ध से किसी संज्ञा के बदले किया जाता है।

२३२. (१) पुरुषवाचक सर्वनाम (Personal pronoun)—जिन सर्वनामों का प्रयोग उत्तम पुरुष, मध्यमपुरुष, या अन्य पुरुष, इन तीन में से किसी के लिये कियाजाय उन्हें 'पुरुष-वाचक सर्वनाम' कहते हैं। (न० ३३०)

२३३. (२) सम्बन्धवाचक सर्वनाम (Relative pronouns)—जिन सर्वनामों से सम्बन्ध जाना जाय। जैसे—जो-सो, जो-वह, और इनके रूपान्तर जिसने-तिसने, जिसने-उसने, जिसको-तिसको, जिसको-उसको, जिसका-तिसका, जिसका-उसका, जिन्होंने-उन्होंने, इत्यादि।

२३४ (३) प्रश्नवाचक सर्वनाम (Interrogative Pronoun)—जिन सर्वनामों से प्रश्न का बोध हो। जैसे—कौन, क्या, और इनके रूपान्तर किसने, किसको, किसका, किन, किन्हों ने, इत्यादि।

२३५ (४) निश्चयवाचक सर्वनाम (Demonstrative Pronoun)—जिन सर्वनामों

२५५. २. यौगिक सार्वनामिकविशेषण--जो शब्द मूलसर्वनामों में प्रत्यय लगाने से बन कर विशेषण का काम दें। जैसे--ऐसा, वैसा, हमारा, उसका, तुम्हारी इत्यादि।

२५६. (८) समानाधिकरणविशेषण (Appositional Adjectives)--जो विशेषण किसी संज्ञा की व्यापकता को मर्यादित न कर केवल उसके अर्थ को स्पष्ट करें। जैसे--'पतिव्रता' सीता, 'प्रतापी' भोज, 'त्रिकालज्ञ' परमात्मा, 'बली' भीम, 'दानी' करण। (ऐसे विशेषण प्रायः व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के साथ ही आते हैं)। (नं० २३०)

२५७. (९) संज्ञात्मकविशेषण (Nominal Adjectives)--जो संज्ञा किसी अन्य संज्ञा के पूर्व या सर्वनाम के आगे आकर विशेषण का काम दे। जैसे—'स्वर्ण' पदक 'स्वर्ण' मुहर, 'ताम्र' भस्म, मैं 'रामलाल' स्वीकार करता हूं कि......, इत्यादि।

२५८. (१०) क्रियार्थक विशेषण(Verbal Adjectives, or Participles)-[नo १९७(२)]

१. अपूर्णवर्तमानक्रियार्थक विशेषण (Present Imperfect Participle)—जैसे-'दौड़ता हुआ' आदमी, 'चलती' रेल, इत्यादि।

२. पूर्णभूतकालिकक्रियार्थक विशेषण (Past Perfect Participle)--जैसे--'थका हुआ' मनुष्य, 'थका' घोड़ा, 'पढ़ा लिखा' आदमी, इत्यादि।

३. कर्तृसूचकक्रियार्थक विशेषण (Verbal Adj. denoting Doer or Agent)-जैसे—'मारने वाला' मनुष्य, 'रोऊ' बालक, 'लड़ाकू' आदमी, 'खिलाड़ी' लड़का, इत्यादि।

२५९. विशेष्य (Substantive)--कोई विशेषण जिस संज्ञा या सर्वनाम में किसी प्रकार की विशेषता सूचित करता या उसकी व्याप्ति को मर्यादित करता है उस संज्ञा या सर्वनाम, को 'विशेष्य' कहते हैं।

२६०. क्रिया (Verb)--क्रिया वह विकारी शब्द है जिसके प्रयोग से किसी वस्तु के विषय में कुछ विधान किया जाय, अर्थात् जिससे किसी कार्य का होना या करना जाना जाय।

२६१. समापिका क्रिया (Finite Verb)--क्रिया के लिंग, वचन, काल, आदि युक्त प्रत्येक विकारी रूप को 'समापिका क्रिया' कहते हैं।

२६२. अकर्मक क्रिया (Intransitive Verb)—जिस क्रिया का कोई कर्म सूचक शब्द वाक्य में नहीं होता, अर्थात् जिस क्रियाके द्वारा प्रकट किये हुए कार्य्य का फल कर्ता ही पर पड़े, कर्ता को छोड़ अन्य कहीं न जाय।

२६३. (१) पूर्ण अकर्मक क्रिया (Intr. Verb of Complete Predication)--जो अकर्मक क्रिया अपनी पूर्णता के लिये किसी अन्य शब्द को न चाहे। जैसे-आना, जाना, खेलना, कूदना, हँसना, भागना, हिलना, इत्यादि।

२६४. (२) अपूर्ण अकर्मक क्रिया (Copulative, or Intr. Verb of Incomplete Predication)--जो अकर्मक क्रिया अपनी पूर्णता के लिये किसी अन्य शब्द (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण या क्रिया विशेषण) को भी चाहे। जैसे-होना, रहना, बनना, दीखना, इत्यादि। वह राजा है, वह मैं हूं, वह अच्छा है।

२६५. (३) सजातीय अकर्मक क्रिया (Cognative Verb)—जिस अकर्मक क्रिया के साथ उसी क्रियाजन्य भाववाचक संज्ञा कर्म के समान प्रयुक्त हो। जैसे—लड़का अच्छी चाल चला, लड़कियाँ सुन्दर गान गा रही हैं। इत्यादि। (नं० २८९)

२६६. सकर्मक क्रिया (Transitive Verb)—जिस क्रिया का कोई कर्मसूचक शब्द भी वाक्य में हो, अर्थात् जिस क्रिया के द्वारा प्रकट किये हुए कार्य का फल कर्त्ता से निकल कर किसी दूसरी वस्तु पर जाय।

२६७ उभय विध क्रिया (Verbs both Tr. and Intr according to the Context) जो क्रिया प्रयोगानुसार कहीं अकर्मक हो और कहीं सकर्मक। जैसे-पुजलाना—मेरी हथेली पुजलाती है (अकर्मक) मैं अपनी हथेली को पुजलाता हूं (सकर्मक)।

२६८. एककर्मक क्रिया (Transitive Verbs of one Object)—जिस सकर्मक क्रिया का कर्म केवल एक ही हो। जैसे पढ़ना, उसने किताब पढ़ी।

२६९ पूर्ण सकर्मक क्रिया (Transitive Verbs of Complete Predication)—जिस सकर्मक क्रिया के कार्य का आशय कर्म द्वारा पूर्णरूप प्रकट हो। जैसे—मारना, उसने मुझे मारा।

२७०. अपूर्ण सकर्मक क्रिया (Factitive Verbs)—जिस सकर्मक क्रिया द्वारा प्रकट हुए कार्य का आशय कर्म के रहते भी अपूर्ण ही रहे। जैसे-बनाना, कराना, आदि। उसने मुझे राजा बनाया, रामने हरिको नौकर कराया।

२७१. द्विकर्मक क्रिया (Tr. Verbs of two Objects)—जिस सकर्मक क्रिया के कर्म दो हों। जैसे—देना, उसने 'मुझे' 'किताब' दी।

२७२ प्रेरणार्थक क्रिया (Causative Verb)—जिस सकर्मक क्रिया के प्रेरक और प्रेरित दो कर्त्ता हों। जैसे—राम ने हरि से पत्र लिखाया। (यहाँ लिखाया क्रिया के दो कर्त्ता हैं। राम प्रेरक कर्त्ता है और हरि प्रेरित कर्त्ता)। (नं० २८२, २८३)

२७३. गुप्तकर्मक क्रिया (Tr. Verbs of implied Object.)-जिस सकर्मक क्रिया का कर्म अप्रकट या लुप्त हो। जैसे—वह "सुनता है", लड़के "पढ़ते हैं"।

२७४. संयुक्त क्रिया (Compound Verb)—जो क्रिया दो क्रियाओं के संयोग से बनी हो। जैसे—लिखसकना, पढ़लेना, खाचुकना, सोजाना, चौंकपड़ना, मारदेना, लेबैठना, देडालना, इत्यादि। (नं० ४०६)

२७५ धातु (Root or Verbal Root)—क्रिया के मूल रूप को 'धातु' कहते हैं। जैसे—लिख, खा, कर, इत्यादि। धातु में 'ना' प्रत्यय जोड़ने से "क्रिया का साधारणरूप" बनता है। क्रिया के इस साधारण रूप को भी हिन्दी भाषा में प्रायः "धातु"ही बोलते हैं। (नं. १८८, २७६-२८०)

२७६. (१) मूलधातु (Primitive Verbs)—स्वयंसिद्ध धातु को 'मूलधातु' कहते हैं जैसे—आना, जाना, बैठना, लेना, देना, लिखना, पढ़ना, करना, इत्यादि।

२७७. (२) यौगिकधातु (Derivative Verbs)—जिन धातुओं की व्युत्पत्ति किसी मूल धातु से या किसी अन्य शब्द भेद से हुई हो उन्हें 'यौगिक धातु' कहते हैं। जैसे—

दिलाना, दिलवाना, लिखवाना, बतियाना, दुखयाना. इत्यादि (नं० २७८)

२७८. (३) नामधातु (Denominative or Nominal Verbs)—जो धातुएँ अन्य शब्द भेदों में से किसी से बनती हैं । जैसे—रँगना, अपनाना, चिकनाना, दुराना, हाँकना, छुपाना, मुट्ठियाना, इत्यादि ।

२७९. (४) संयुक्त नामधातु (Compound Denominatives)—जो धातुएँ किसी मूल धातु और अन्य शब्दभेद के संयोग से बनें । जैसे--बात करना, अलग करना, दुख देना, सुख पहुँचाना, अपना बनाना, श्वास लेना, इत्यादि ।

२८०. (५) अनुकरण धातु (Imitative Verbs)—जो धातुएँ किसी वस्तु की ध्वनि के अनुकरण पर बनें । जैसे- बड़बड़ाना, खटखटाना, थरथराना, चूँ चूँ करना, काँउ काँउ मचाना ।

२८१. कर्त्ता (Doer, Subject)—क्रिया के व्यापार या कार्य को करने वाला "कर्त्ता" कहलाता है । जिस शब्द से किसी क्रिया के व्यापार को करने वाले का बोध हो उसे व्याकरण की परिभाषा में 'कर्त्ता' कहते हैं । इसी को 'कर्तृपद' भी कहते हैं । (नं०३२९)

२८२. प्रेरककर्त्ता (Causative Doer)—प्रेरणार्थक क्रिया का कार्य कराने वाले को 'प्रेरक कर्त्ता' कहते हैं । अर्थात् प्रेरणार्थक क्रिया के दो कर्त्ताओं में से जो कर्त्ता क्रिया के व्यापार की प्रेरणा करने का बोधक हो उसे 'प्रेरक कर्त्ता' कहते हैं । जैसे—राम हरि से पत्र लिखाता है । इस वाक्य में 'राम' प्रेरककर्त्ता है । (नं० २७२, ३२१)

२८३. प्रेरितकर्त्ता (Instrumental Doer)—प्रेरणार्थक क्रिया का कार्य जिस से कराया जाय उसे 'प्रेरितकर्त्ता' कहते हैं । अर्थात् प्रेरणार्थक क्रिया के दो कर्त्ताओं में से जो क्रिया के कार्य का वास्तविक कर्त्ता है उसे 'प्रेरितकर्त्ता' कहते हैं । जैसे—राम हरि से पत्र लिखाता है । इस वाक्य में 'हरि' प्रेरितकर्त्ता है । (नं० २७२, ३२१)

२८४. कर्म (Done upon, Object)—सकर्मकक्रिया से सूचित होने वाले कार्य का फल कर्त्ता से निकल कर जिस वस्तु पर पड़े उसे 'कर्म' कहते हैं । (नं०२६६,२६३,३२४)

२८५. मुख्यकर्म
२८६. प्रधानकर्म
} (Direct Object)—द्विकर्मक क्रिया का प्रायः पदार्थवाचक कर्म 'मुख्यकर्म' होता है । (नं० २७१)

२८७. गौणकर्म
२८८. अप्रधानकर्म
} (Indirect Object)—द्विकर्मक क्रिया का प्रायः प्राणिवाचक कर्म 'गौणकर्म' होता है । (नं० २७१)

२८९. सजातीयकर्म (Cognate Object)—सजातीय अकर्मक क्रिया के कर्म को जो उसी क्रिया का कोई रूपान्तर होता है 'सजातीयकर्म' कहते हैं । जैसे--वह अच्छी चाल चला, उसने अच्छा गाना गाया, लड़का कैसी दौड़ दौड़ा । इन वाक्योंमें चाल,गाना, दौड़, यह शब्द 'सजातीयकर्म' हैं । (नं० २६५)

२९०. पूर्त्ति (Complement)—अपूर्ण क्रिया को पूर्ण करने के लिये जिस शब्द का प्रयोग किया जाय । (नं० २६४, २७०)

२९१. उद्देश्यपूर्त्ति (Subjective Complement)—अपूर्ण अकर्मक क्रिया की पूर्ति को 'उद्देश्यपूर्ति' कहते हैं । उद्देश्य प्रायः कर्त्ताकारक के रूप में रक्खा जाता है, इसी

लिये उद्देश्यपूर्ति को 'कर्त्तापूर्त्ति' भी कहते हैं। (नं० २६४)

२९२. कर्मपूर्ति (Objective Complement)--अपूर्ण सकर्मक क्रिया की पूर्त्ति को 'कर्मपूर्ति' कहते हैं। (नं० २७०)

२९३. पूरक (Completion or Object of a Trans. Verb)--सकर्मक क्रिया के कार्य की पूर्त्ति जिस कर्म या कर्मों द्वारा होती है उस कर्म या कर्मों को 'पूरक' भी कहते हैं। (नं० २६९, २८४, ३०४)

२९४. **अव्यय** (Indeclinables)—जिन शब्दों का रूप सदा एक सा बना रहे अर्थात् जिनके रूप में लिंग, वचन और कारक के कारण किसी प्रकार का परिवर्तन न हो उन्हें 'अव्यय' कहते हैं। (नं० २६५, २९९, ३०२, ३०५—३११)

२९५. [१] क्रिया विशेषण अव्यय (Adverbs)--जो अव्यय किसी क्रिया के कार्य में कुछ विशेषता सूचित करें। (नं० २९६, २९७, २९८)

२९६. १. प्रयोगाधार क्रियाविशेषण.—

(१) साधारण क्रियाविशेषण—जिनका प्रयोग किसी वाक्य में स्वतंत्र हो। जैसे—'हाय ! अब मैं क्या करूँ', 'अरे ! यह क्या हुआ'। इन वाक्यों में 'हाय' और 'अरे' साधारण क्रियाविशेषण हैं।

(२) संयोजक क्रियाविशेषण--जिनका सम्बन्ध किसी उपवाक्य के साथ रहे। जैसे-'जहां अब समुद्र है वहां कभी जंगल था'। इस वाक्य में 'जहां-वहां' संयोजक क्रिया विशेषण हैं।

(३) अनुबद्ध क्रियाविशेषण—जिनका प्रयोग अर्थ अवधारणके लिये किसी भी शब्द-भेदके साथ हो सकता है। जैसे-'यह तो किसी ने धोखा ही दिया,'मैंने तो उसे देखा तक नहीं', 'आपके आने भर की देर है'। इन वाक्यों में 'तो', 'ही', 'भर', अनुबद्ध क्रिया विशेषण हैं।

२९७ २. रूपाधर क्रिया विशेषण:—

(१) मूल क्रियाविशेषण--जो क्रियाविशेषण किसी अन्य शब्द से न बने हों। जैसे-ठीक, दूर, फिर, नहीं, इत्यादि।

(२) यौगिक क्रियाविशेषण-जो क्रियाविशेषण अन्य शब्दों में प्रत्यय या कोई अन्य शब्द जोड़ने से बने हों। जैसे -क्रमशः, दिन भर, रात तक, रात को, कार्य वश, प्रेम-पूर्वक, इस लिये, जिस से, इतने में, पहले से, चाहे, चाहे हुए, यहां तक, झट से, अभी, यहीं, पहिले ही, इत्यादि।

(३) संयुक्त क्रियाविशेषण—जो संज्ञा आदि की द्विरुक्ति से या दो भिन्न २ संज्ञा आदि के मेल से बने हों। जैसे—घर घर, घराघर, धीरे धीरे, गट गट, एक साथ, प्रतिदिन, रात दिन, जब कभी, मुख्य करके, इत्यादि।

(४) स्थानीय क्रियाविशेषण—जो कोई शब्दभेद बिना किसी रूपान्तर के वाक्य के किसी विशेष स्थान में पड़ कर "क्रिया विशेषण' का काम दें। जैसे-तुम मेरी सहायता अवश्य करोगे, लीजिये महाराज मैं यह चला, वह उदास

बैठा है, वह दौड़कर चलता है, इन वाक्यों में पत्थर, यह, उदास, दौड़ कर, यह शब्द 'स्थानीय क्रियाविशेषण' हैं।

२९८. ३. अर्थाधार क्रियाविशेषण :—

(१) स्थानवाचक क्रियाविशेषण—जो क्रियाविशेषण स्थानसूचक अर्थ प्रकट करें।

१. स्थिति बोधक--यहां, वहां, जहां, कहां, तहां, आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, भीतर, बाहर, सर्वत्र, इत्यादि।

२. दिशा बोधक--इधर, उधर; किधर, जिधर, तिधर, दाहने, बायें, इत्यादि।

(२) कालवाचक--जो क्रियाविशेषण समय सूचक अर्थ प्रकट करें।

१. समय बोधक--आज, कल, परसों, तरसों, नरसों, अब, जब, सब, तब, अभी, कभी, फिर, इत्यादि।

२. अवधिबोधक--आजकल, नित्य, सदा, अबतक, दिनभर, घड़ीभर, लगातार।

३. पौनःपुन्य बोधक--बार बार, बहुधा, प्रतिदिन, घड़ी घड़ी, कई बार, इत्यादि।

(३) परिमाण वाचक--जो क्रियाविशेषण परिमाणद्योतक अर्थ प्रकट करें।

१. अधिकता बोधक--बहुत, अति, सर्वथा, पूर्णतया, अत्यन्त, निपट, बिल्कुल, इत्यादि।

२. न्यूनता बोधक--कुछ, किंचित, लगभग, टुक, ज़रा, इत्यादि।

३. पर्याप्ति बोधक—बस, यथेष्ट, अस्तु, ठीक, काफ़ी, इत्यादि।

४. तुलना बोधक--अधिक, कम, बढ़कर, और भी, इत्यादि।

५. श्रेणी बोधक--यथाक्रम, थोड़ा थोड़ा, तिलतिल, शनैः शनैः, इत्यादि।

(४) रीतिवाचक--जो क्रियाविशेषण रीतिद्योतक अर्थ प्रकट करें।

१. प्रकारार्थक--ऐसे, वैसे, कैसे, जैसे, तैसे, मानो, यथा, तथा, धीरे, योंही, हौले, ध्यानपूर्वक, इत्यादि।

२. निश्चयार्थक—अवश्य, सचमुच, निःसन्देह, बेशक, ज़रूर, यथार्थमें, वस्तुतः।

३. अनिश्चयार्थक--कदाचित, शायद, बहुत करके, यथासम्भव, इत्यादि॥

४. कारण कार्यार्थक--किस लिये, क्यों, काहेको, यों, इसलिये, इत्यादि॥

५. विधिनिषेधार्थक—हाँ, जी, जीहाँ, ठीक, सच, न, नहीं, मत, कदापि नहीं, हरगिज़ नहीं, इत्यादि॥

६. अवधारणार्थक—तो, ही; मात्र, भर, तक, इत्यादि।

२९९. [२] सम्बन्ध सूचक अव्यय (Prepositions)--जिनके द्वारा किसी संज्ञा या सर्वनाम का सम्बंध वाक्य के किसी अन्य शब्द के साथ जाना जाय।

३००. १. संबद्ध सम्बंध सूचक-जो संज्ञाओं या सर्वनामों की किसी न किसी विभक्ति(के,को, से, री, ने, नी, से) के आगे आते हैं। जैसे--राम के साथ, उसके आगे, राम की नाईं, उसकी ओर, मेरे पीछें, हमारी तरह, अपने साम्हने, अपनी ओर, मुझ से आगे, इत्यादि में साथ, आगे, नाईं, ओर, इत्यादि "संबद्ध सम्बन्धसूचक अव्यय" हैं।

३०१. २. अनुबद्ध संबन्ध सूचक--जो संज्ञा या सर्वनाम के आगे या उनके विकृतरूप के आगे

बिना के, की, आदि विभक्तिके ही आते हैं। जैसे—लखनऊ तक, किनारे तक, कानपूर से, किनारेसे, चांद सा, हम सा,, राम सहित, राम समेत, गुण रहित, ध्यानपूर्वक, मुझ सरीखा, कटोरा भर, इत्यादिमें तक, से, सा, सहित, समेत, इत्यादि 'अनुबद्ध सम्बन्ध सूचक' अव्यय हैं।

३०२. [३] समुच्चयबोधक अव्यय (Conjunctions)—जो एक ही प्रकार के दो या अधिक शब्दों, पदों, वाक्य खण्डों, या वाक्यों को मिलावें। (३०३, ३०४)

३०३. १. समानाधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय ('Co-ordinate Conjunctions)—जो दो या अधिक मुख्य वाक्यों को मिलाते हैं।

(१) संयोजक समानाधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय—और,व, तथा, एवं, इत्यादि।

(२) विभाजक समानाधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय—या, वा, अथवा, किंवा, चाहे, नकि, नतो, नहीं तो, कि, यातो, इत्यादि।

(३) विरोधदर्शक समानाधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय—पर, परन्तु, किन्तु, वरन, लेकिन, मगर, बल्कि, इत्यादि।

(४) परिणामदर्शक समानाधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय-अतः, अतएव, इसलिये, इस से, इस वास्ते, इत्यादि।

३०४. २. व्यधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय (Sub-ordinate Conjunctions)—जो एक मुख्य वाक्य के साथ एक या अधिक आश्रित वाक्यों को मिलाते हैं।

(१) कारणवाचकव्यधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय—क्योंकि, इस लिये, कारण कि, काहे से कि, इत्यादि।

(२) उद्देश्यवाचकव्यधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय—ताकि, जिस से, जिस से कि, जिसमें कि, इस लिये कि, इत्यादि।

(३) संकेतवाचकव्यधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय—यदि-तो, जो-तो, यद्यपि-तथापि, इत्यादि।

(४) स्वरूपवाचकव्यधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय—अर्थात्, मानो, कि, यानी, इत्यादि।

(५) पूर्तिसूचकव्यधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय—कि,

३०५. [४] विस्मयादिबोधक अव्यय या इंगितबोधक अव्यय (Interjections)—जिन से बोलने वाले के मन का आकस्मिक भाव प्रकट हो।

१. आश्चर्यसूचक—वाह, ओ हो, हैं, ऐं, अरे, क्या खूब, इत्यादि।

२. हर्षसूचक—अहा, आहा, वाहवा, खूब, अच्छा, इत्यादि।

३. शोकसूचक—शोक, शोक शतशोक, त्राहि त्राहि, इत्यादि।

४. पीड़ासूचक—आह, हाय, मैया रे, बाप रे, दैया रे, इत्यादि।

५. ग्लानिसूचक—छि, छिछि, दूर, हट, इत्यादि।

६. अनुमोदनसूचक—धन्य धन्य, बहुत ठीक, शाबाश, वाहवा, इत्यादि।

७. तिरस्कारसूचक—धिक, चुप, थूथू, राम राम, शर्म, इत्यादि।

८. स्वीकारतासूचक--हां, जी हां, अच्छा, इत्यादि।

९. सम्बोधनार्थक--रे, अरे, ओ, अजी, हे, हो, इत्यादि। (नं०३३२)

१०. वाक्यरूप--दूर हो, डूब मर, इत्यादि।

३०६. [५] विभक्तिनामक अव्यय (Inflectional Terminations)--कारकों के चिह्न "विभक्ति नामक अव्यय" हैं। ने, को, द्वारा, से (with), के लिये, से (from), का, की, के, रा, री, रे, ना, नी, ने, में, पर, पै, (नं० १९४)

३०७. [६] उपसर्गनामक अव्यय (Prefixes)--जो अव्यय कुछ अन्य शब्दों की आदि में जोड़े जाते हैं और जिनके जुड़ने से उन शब्दों के अर्थ में कुछ परिवर्तन होकर कुछ विशेषता आ जाती है। जैसे--अभिमान, अपमान, सम्मान (सन्मान), अनुमान, इन शब्दों में मान शब्द की आदि में अभि, अप, सम्, अनु, यह उपसर्ग जोड़े जाने से प्रत्येक के अर्थ में कुछ परिवर्तन हो जाता है। (नं० १९२)

नोट--निम्नलिखित २२ उपसर्ग संस्कृत भाषा के हैं जो हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होने वाले संस्कृत शब्दों की आदि में जोड़े जाते हैं:--

अ (अन्, अन), अति, अधि, अनु, अप, अभि, अव, आ, उत्, उप, कु, दुस्, (दुः, दुर्), निस् (निः, निर्), नी (नि), परा, परि, प्र, प्रति, वि, सम् (सं), स (सह), सु।

३०८. [७] प्रत्ययनामक अव्यय (Affixes)--जो अव्यय कुछ अन्य शब्दों के अन्त में जोड़े जाते हैं और जिनके जोड़ने से उनके अर्थ में कुछ विशेषता आ जाती है। (नं० १९३)

३०९. [८] कृदन्तअव्यय (Verbal Derivations)--जो शब्द किसी क्रिया के मूल रूप में किसी प्रत्यय के जोड़ने से बनते हैं उन्हें कृदन्तअव्यय कहते हैं। जैसे-लिखाई, जानकर, एकत्रान, इत्यादि। (नं० १९७)

३१०. [९] विकारीअव्यय--जिन किसी किसी आकारान्त अव्ययों में लिंग और वचन के कारण रूपान्तर भी होता है वे 'विकारीअव्यय' हैं। शेष सर्व अव्यय 'अविकारी' हैं। जैसे-सरीखा, ऐसा, वैसा, जैसा, इतना, उतना, जितना।

३११. [१०] विकृतअव्यय (Varied Form of Indeclinables)--विकारी अव्यय के विकृतरूप को "विकृतअव्यय" कहते हैं। जैसे--सरीखे, ऐसे, वैसी, जैसों, इत्यादि।

शब्द-रूपान्तर

(नं० २०३, २०४, नोट)

१. लिङ्ग

३१२. लिंग (Gender)--संज्ञा या किसी अन्य विकारी शब्द के जिस रूप से वस्तु की पुरुष या स्त्री (या क्लीव) जाति का बोध होता है उसे 'लिंग' कहते हैं।

३१३. (१) पुंलिंग (Masculine Gender)--शब्द के जिस रूप और अर्थ से वास्तविक या कल्पित पुरुषत्व का बोध होता है उसे 'पुंलिंग' कहते हैं। जैसे--पुत्र, घोड़ा, धोबी, पत्र, डंडा, शरीर, सूरज, बड़ा, अच्छा, आता है, गया, इत्यादि।

३१४. (२) स्त्रीलिङ्ग (Feminine Gender)--शब्द के जिस रूप और अर्थ से वास्तविक या कल्पित स्त्रीत्व का बोध होता है उसे 'स्त्रीलिंग' कहते हैं। जैसे--पुत्री, घोड़ी, धोबिन, पत्री, डंडी, काया, पृथ्वी, बड़ी, अच्छी; आती है, गई, इत्यादि।

३१५. (३) नपंसकलिंग (Nueter Gender)—शब्द के जिस रूप और अर्थ से वास्तविक या कल्पित क्लीवत्व का (नपुंसकता, हिजड़ापन, कायरता, विक्रमहीनता, निर्बलता का) बोध हो उसे नपुंसक लिंग कहते हैं। (हिन्दी भाषा में इस लिंग का प्रयोग नहीं होता)।

२. वचन

३१६. वचन (Number)--संज्ञा या किसी अन्य विकारी शब्द के जिस रूप से उसकी संख्या के एकत्व द्वित्व या बहुत्व का बोध हो उसे 'वचन' कहते हैं।

३१७. (१) एक वचन (Singular Number)—शब्द के जिस रूप से उसके एकत्व का बोध हो। जैसे-पुस्तक, लड़का, गाय, मनुष्य, बड़ा, अच्छा, गया, आता है, इत्यादि।

३१८. (२) द्विवचन (Dual Number)--शब्द के जिस रूप से उसके द्वित्व अर्थात् दो की संख्या का बोध हो। (हिन्दी भाषा में इसका प्रयोग नहीं होता)।

३१९. (३) बहुवचन (Plural Number)--शब्द के जिस रूप से उसके बहुत्व का बोध हो। जैसे—पुस्तकें लड़के, गायें, मनुष्यों, बड़े, अच्छे, गये, आते हैं, इत्यादि।

३. कारक

३२० कारक (Cases of Nouns)—संज्ञा या सर्वनाम की अवस्थाविशेष को 'कारक' कहते हैं, अर्थात् संज्ञा व सर्वनाम के जिस रूप से उसका सम्बन्ध वाक्य के किसी अन्य शब्द के साथ जाना जाता है उसे 'कारक' कहते हैं।

३२१ (१) कर्त्ता (Nominative Case)—संज्ञा या सर्वनाम की जिस अवस्था या जिस रूपसे उस वस्तु का बोध हो जिसके द्वारा किसी क्रिया के कार्य का करना या होना पाया जाय, अथवा जिसके विषय में क्रिया द्वारा कुछ कहा जाय या विधान किया जाय उसे 'कर्त्ता' कारक कहते हैं। जैसे--मैं आया, मैंने पत्र लिखा, राम पीटा गया, मुझ से बैठा नहीं जाता, इन वाक्यों में मैं, मैंने, राम, मुझ से, यह कर्त्राद्योतक शब्द हैं। (नं० २८१)

३२२ १. प्रेरक कर्त्ता—(नं० २८२)

३२३ २. प्रेरित कर्त्ता--(नं० २८३)

३२४ (२) कर्म (Accusative Case)--संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उस वस्तु का बोध हो जिस पर क्रिया के कार्य का फल पड़ता है उसे 'कर्म' कारक कहते हैं।

३२५. १ प्रधान कर्म या मुख्य कर्म--(नं० २८५)

३२६. २. अप्रधान कर्म या गौण कर्म—(नं० २८७)

३२७ (३)करण (Instrumental Case)--संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसकी वाच्य वस्तु का कर्त्ता द्वारा की गई क्रिया के कार्य का साधन होना सूचित हो उसे 'करण' कारक कहते हैं। इसके चिह्न 'से', 'के द्वारा' और 'के द्वारा' हैं। जैसे—राम ने उसे बाण से मारा, राम ने अपना पत्र मुझ से लिखाया, या मेरे द्वारा लिखाया। यहाँ बाण से, मुझ से, मेरे द्वारा, यह करण कारक हैं।

३२८ (४)संप्रदान (Dative Case)--संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसकी वाच्य वस्तु के लिये कर्त्ता द्वारा किसी क्रिया का किया जाना प्रकट हो उसे 'संप्रदान' कारक

कहते हैं। इसके चिह्न 'के लिये', 'रे लिये', 'ने लिये' और 'को' हैं। जैसे—राम के लिये मैंने रथ बनाया, रामको मैंने रथ बनाकर दिया, तुम्हारे लिये मैंने धन दिया, मैंने अपने लिये रथ बनाया, तुमको मैंने धन दिया; इन वाक्यों में राम के लिये, रामको, तुम्हारे लिये, अपने लिये, तुम को, यह संप्रदान कारक हैं।

३२९.(५) अपादान (Ablative Case)—संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप द्वारा उसकी वाच्य वस्तु से किसी अन्य वस्तु का अलग होना प्रकट हो उसे 'अपादान' कारक कहते हैं। इसका चिह्न 'से' है। जैसे—वृक्ष से फल गिरा, रामने तुम से आम लिया; इन वाक्यों में 'वृक्ष से' और 'तुमसे' अपादान कारक हैं। इत्यादि॥

३३०. (६) संबन्ध (Genitive or Possessive Case)—संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसकी वाच्य वस्तुका किसी अन्य वस्तुके साथ सम्बन्ध जाना जाय उसे सम्बन्ध कारक कहते हैं। इसके चिह्न का, के, की, रा, रे, री, ना, ने, नी, हैं। जैसे— राम का, रामके, राम की, मेरा, मेरे, मेरी, अपना, अपने, अपनी, इत्यादि।

३३१. (७) अधिकरण (Locative Case)—संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से कर्ता द्वारा की गई क्रिया के कार्य का आधार प्रकट हो उसे 'अधिकरण' कारक कहते हैं। इस के चिह्न 'में' अथवा 'पर' हैं। जैसे, घर में, पृथ्वी पर, मुझ में, तुम पर।

३३२. (८) सम्बोधन (Vocative Case)—संज्ञा के जिस रूप से किसी को चेताना, या पुकारना सूचित होता है उसे 'सम्बोधन' कारक कहते हैं। इसके चिह्न रे, अरे, ओ, अजी, हे, हो, आदि सम्बोधनार्थक अव्यय हैं जो संज्ञा के पहले रक्खे जाते हैं। जैसे- अरे लड़के, ओ आदमी, अजी महाशय, इत्यादि।

३३३. विभक्ति (Inflectional Terminations)—प्रत्येक कारक के चिह्नों को 'विभक्ति' कहते हैं। (नं० ३०६)

३३४. सुप्-संस्कृत संज्ञाओं या सर्वनामों के आगे लगाई जाने वाली २१ विभक्तियों या कारक चिह्नों को 'सुप्" या "सुप् प्रत्याहार" कहते हैं।

३३५. सुबन्तपद (Inflective Base)-जिन शब्दों में विभक्ति लगाई जाती है उन्हें 'सुबन्त-पद" कहते हैं।

४. पुरुष

३३६. पुरुष (Person)—वक्ता, श्रोता, और इनके अतिरिक्त अन्य सर्व, सृष्टि के इन तीन रूपों को व्याकरण की परिभाषा में 'पुरुष' कहते हैं।

३३७.(१) उत्तम पुरुष / प्रथम पुरुष } (First Person)—वक्ता बोधक सर्वनाम—मैं और इसके रूपान्तर।

३३८.(२) मध्यम पुरुष / द्वितीय पुरुष } (Second Person)—श्रोता बोधक सर्वनाम-तू, आप और इनके रूपान्तर।

३३९. (३) अन्य पुरुष / तृतीय पुरुष } (Third Person)—वक्ता और श्रोताके अतिरिक्त अन्य पदार्थ बोधक सर्वनाम—वह, और इसके रूपान्तर।

नोट १--सर्व संज्ञाएँ भी अन्य पुरुष की गणना में हैं।

नोट २--संस्कृत भाषा में 'प्रथम पुरुष' शब्द 'उत्तम पुरुष' का पर्यायवाची नहीं है किन्तु 'अन्य पुरुष' का है।

५. विशेषणावस्था

३४०. विशेषणावस्था (Comparision of Adjectives)-विशेषण के जिन रूपों से उनकी परस्पर तुलना की जाती है उन्हें 'विशेषणावस्था' कहते हैं। जैसे-अच्छा, अधिक अच्छा, कहीं अच्छा, कम अच्छा, सबसे अच्छा, अच्छे से अच्छा, सर्वोत्तम, उच्चतर, उच्चतम, इत्यादि। (न० ३४१, ३४२, ३४३)

३४१. (१) मूलावस्था या साधारणावस्था (Positive Degree)--जैसे--उच्च, अच्छा, इत्यादि।

३४२. (२) उत्तरावस्था या तुलनात्मक अवस्था (Comparative Degree)--जैसे--उच्चतर, अधिक अच्छा, कम अच्छा, इत्यादि।

३४३. (३) उत्तमावस्था या उत्कृष्टावस्था (Superlative Degree)--जैसे--उच्चतम, सब से अच्छा, इत्यादि।

६ वाच्य

३४४. क्रियावाच्य (Voice)--क्रिया के जिस रूप से यह जाना जाय कि वाक्य में कर्त्ता के विषय में विधान किया गया है, या कर्म के विषय में अथवा केवल भाव के विषय में। जैसे--राम ने पत्र लिखा, पत्र लिखा गया, धूप में दौड़ा नहीं जाता, इन वाक्यों में 'लिखा', 'लिखा गया', 'दौड़ा नहीं जाता', यह "क्रियावाच्य" के रूप हैं।

३४५. (१) कर्तृवाच्य (Active Voice)--क्रिया के जिस रूप से यह जाना जाय कि वाक्य का उद्देश्य (न० ४४२) क्रिया का कर्त्ता है उसे 'कर्तृवाच्य' कहते हैं। जैसे-मैं बैठा, राम ने पत्र लिखा।

३४६ (२) कर्मवाच्य (Passive Voice)--क्रिया के जिस रूप से यह जाना जाय कि वाक्य का उद्देश्य जो कर्त्ता कारक में रक्खा जाता है वह यथार्थ में क्रिया का कर्म है उसे 'कर्मवाच्य' क्रिया कहते हैं। जैसे--पत्र लिखा गया, पानी पिया गया, इत्यादि।

३४७. (३) भाववाच्य (Intransitive Passive Voice,or Impersonal Form of the Verb)--क्रिया के जिस रूप से यह जाना जाय कि वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्त्ता या कर्म कोई नहीं है किन्तु उसी क्रिया का कोई भाववाचक शब्द परोक्षरूप से है उसे 'भाववाच्य' क्रिया कहते हैं। जैसे--'यहां दौड़ा नहीं जाता' में 'दौड़ा नहीं जाता' क्रिया का उद्देश्य 'दौड़ना' अप्रत्यक्ष है।

नोट--यदि कर्मवाच्य या भाववाच्य क्रियाओं के कर्त्ता को भी दिखाने की आवश्यकता हो तो उसे 'करण कारक' के रूप में वाक्य के साथ लिख देते हैं। जैसे-राम से (राम द्वारा) पत्र लिखा गया। यहां मुझ से दौड़ा नहीं जाता इत्यादि।

३४८ वाच्य परिवर्तन (Change of Voice)--एक प्रकार के वाच्य को अन्य प्रकार के वाच्य के रूप में बदलने की क्रिया को 'वाच्य परिवर्तन' कहते हैं।

७. काल

३४९. काल (Tense)--क्रिया के जिन रूपों से उसके कार्य के समय का तथा उसकी पूर्ण या अपूर्ण अवस्था का बोध होता है उन्हें 'क्रिया का काल' कहते हैं। अथवा क्रिया सूचक कार्य जिस समय में किया जाता है उसे उस क्रिया का 'काल' कहते हैं। जैसे-आया, आया था, आ रहा था, आता है, आगया है, आरहा है, आयगा, आचुकेगा, आता रहेगा, इत्यादि। (नं० ३५०-३८४)

३५०. भूतकाल या अतीतकाल (Past Tense)—क्रिया के जिस रूप से बीते हुए काल का बोध होता है उसे 'भूतकाल' या "अतीतकाल" कहते हैं। (नं० ३५१, ३५६, ३६१)।

३५१. (१) सामान्य भूतकाल (Past Indefinite Tense)--जिस भूतकाल से क्रिया के कार्य की निकटता या दूरता का बोध न हो। (नं० ३५२-३५५)

३५२. १. साधारण सामन्य भूतकाल (General past Indef. Tense)—जिस भूतकाल से क्रिया के कार्य की न तो निकटता दूरता का और न उसकी समाप्ति असमाप्ति ही का बोध हो। जैसे--राम ने पत्र "लिखा" ॥

३५३. २. समाप्ति सूचक सामान्यभूतकाल (Complete past Indef. T.)—जिस भूतकाल से क्रियाके कार्य की निकटता दूरताका तो बोध नहो पर उसकी समाप्ति सूचित होती हो। जैसे-(१) राम पत्र 'लिख चुका' (२) राम ने पत्र 'लिखलिया' ॥

३५४. ३. असमाप्ति सूचक सामान्य भूतकाल (Incomplete past Indef. Tense)-जिस भूत काल से क्रिया के कार्य की निकटता दूरता का तो बोध नहो पर उसकी असमाप्ति सूचित होती हो। जैसे—राम देर तक पत्र "लिखता रहा" ॥

३५५. ४. सान्त-असमाप्ति सूचक सामान्यभूत काल (Finished Incomplete past Indef. Tense)-जिस भूतकाल से क्रिया के कार्य की निकटता दूरता का तो बोध नहो पर उसकी असमाप्ति का अन्त होना सूचित होता हो। जैसे—राम बारम्बार पत्र "लिखता रह चुका"।

३५६. (२) आसन्न भूतकाल (Present perfect Tense, Contiguous past Tense) जिस भूतकाल से क्रिया के कार्य की निकटता का बोध हो। (नं० ३५७-३६०)

३५७. १. साधारण आसन्नभूतकाल (General Contiguous past Tense, or Ist present perfect Tense)--जिस भूतकाल से क्रिया के कार्य की निकटता का तो बोध हो पर उसकी समाप्ति असमाप्ति का बोध नहो। जैसे--राम ने पत्र "लिखा है" ॥

३५८. २. समाप्ति सूचक आसन्न भूतकाल (Perfect Contiguous past Tense or 2 nd present perfect Tense)—जिस भूतकाल से क्रिया के कार्य की निकटता और समाप्ति दोनों सूचित हों। जैसे—(१) राम पत्र "लिखचुका है", (२) राम ने पत्र "लिखलिया है" ॥

३५९. ३. असमाप्ति सूचक आसन्न भूतकाल (Imperfect Contiguous past Tense, or 1st present perfect Continuous Tense)-जिस भूतकाल से क्रिया

के कार्य की निकटता और असमाप्ति सूचित हो। जैसे--राम कई दिन तक पत्र "लिखता रहा है"॥

३६०. ४ सान्त असमाप्ति सूचक आसन्नभूतकाल (Finished Imperfect Contiguous past Tense, or 2nd present perfect Continuous Tense)--जिस भूत काल से क्रिया के कार्य की निकटता और उसकी असमाप्ति का अन्त सूचित हो। जैसे--राम बारम्बार पत्र "लिखता रह चुका है"।

३६१. (३) दूरभूतकाल या अन्तरित भूतकाल (Remote past Tense)--जिस भूत काल से क्रिया के कार्य की दूरता का बोध हो। (नं० ३६२-३६६)

३६२. १. साधारण दूरभूतकाल (Common Remote past Tense)—जिस भूतकाल से क्रिया के कार्य की दूरता का तो बोध हो पर उसकी समाप्ति असमाप्ति का बोध न हो। जैसे--राम ने पत्र "लिखा था"।

३६३. २. समाप्तिसूचक दूरभूतकाल (Remote past perfect Tense)--जिस भूतकाल से क्रिया के कार्य की दूरता और समाप्ति दोनों सूचित हों। जैसे--(१) राम पत्र "लिख चुका था", (२) राम ने पत्र "लिख लिया था"।

३६४. ३. असमाप्ति सूचक दूरभूतकाल (Remote past Imperfect Tense)--जिस भूतकाल से क्रिया के कार्य की दूरता और असमाप्ति सूचित हो। जैसे--(१) राम पत्र "लिख रहा था" (२) राम पत्र "लिखता रहाथा"।

३६५. ४. नित्य-असमाप्ति सूचक दूरभूतकाल (Perpetual past Imperfect Tense) जिस भूतकाल से क्रिया के कार्य की दूरता और नित्य-असमाप्ति सूचित हो। जैसे--(१) राम पत्र "लिखता था" (२) राम सदैव पत्र "लिखता रहता था"।

३६६. ५. सान्त-असमाप्ति सूचक दूरभूतकाल (Finished past Imperfect Tense)--जिस भूतकालसे क्रियाके कार्यकी दूरता और असमाप्ति पूर्वक पूर्णता सूचित हो। जैसे--(१) राम पत्र "लिखता रह चुका था", (२) राम पत्र "लिखता रहा करता था"।

३६७. वर्त्तमानकाल (Present Tense)--क्रिया के जिस रूप से वर्त्तमानकाल का बोध होता है उसे "वर्त्तमानकाल" कहते हैं। (नं० ३६८-३७२)

३६८. (१) सामान्य वर्त्तमानकाल (Present Indefinite Tense)--वर्त्तमानकाल के जिस रूप से क्रिया के कार्य की समाप्ति असमाप्ति आदि का बोध न हो। जैसे--राम पत्र "लिखता है"।

३६९. (२) तात्कालिक अपूर्ण वर्त्तमानकाल(Present Imperfect Tense)-वर्त्तमानकाल के जिस रूप से क्रिया के कार्य की असमाप्ति सूचित हो। जैसे--राम पत्र "लिखरहा है"।

३७०. (३) सामान्य त्रिकालव्यापक या स्वभावसूचक वर्त्तमानकाल (Permanent Present Indefinite Tense)—वर्त्तमानकाल के जिस रूप से क्रिया के कार्य की त्रिकालव्यापकता या उसके कर्ता का स्वभाव सूचित हो। जैसे--(१) राम प्रातः चार बजे पत्र "लिखा करता है"। (२) बर्फ़ ठंडा "होता है"।

१. प्रत्यक्ष विधि (Present Imperative)--जैसे--पत्र लिख (तू पत्र लिख), पत्र लिखा कर, पत्र लिखता रह, पत्र लिखता रहा कर, पत्र लिखले, पत्र लिख रख, पत्र लिख डाल, इत्यादि।

२. परोक्षविधि (Future Imperative)—जैसे पत्र लिखयो (तू पत्र लिखियो), पत्र लिखा करियो, पत्र लिखता रहियो, पत्र लिखता रहा करियो, पत्र लिखता रहा कीजियो, पत्र लिख रखियो, पत्र लिख लीजियो, पत्र लिख डालियो, इत्यादि।

नोट-आज्ञार्थ क्रिया का प्रयोग केवल मध्यम पुरुष के व्यक्त या अव्यक्त सर्वनाम के साथ ही किया जाता है, उत्तम पुरुष या अन्य पुरुष के साथ नहीं।

३६०. (५) संकेतार्थ या हेतुहेत्वार्थ या अन्याश्रितार्थ (Conditional or Subjunctive Mood)--क्रिया के जिस रूप से एक कार्य का होना दूसरे कार्य के होने पर निर्भर हो। जैसे-यदि राम ने पत्र लिखा है तो.....;यदि राम ने पत्र लिखा था, यदि राम पत्र लिख चुका है, यदि राम पत्र लिखता है, यदि राम पत्र लिखेगा, यदि राम पत्र लिखे, यदि राम पत्र लिखता, इत्यादि।

नोट-निश्चयार्थक क्रिया (नं० ३८६) के कुछ रूपों के अतिरिक्त शेष सर्व रूपों में शब्द "यदि" या "अगर" जोड़ देने से "संकेतार्थ क्रिया" के रूप बन जाते हैं।

३६१. (६) अधिकारार्थ या शक्त्यार्थ } (1st. Potential Mood)--क्रिया के जिस रूप से कर्त्ता की शक्ति, योग्यता या अधिकार सूचित हो। जैसे--राम पत्र लिख सकता है, राम पत्र लिख सका, राम पत्र लिख सकेगा।

नोट-किसी क्रिया के मूल रूप (नं० २७५) में "सकना" क्रिया के रूप जोड़ने से 'अधिकारार्थ क्रिया' के रूप बनते हैं।

३६२. (७) कर्तव्यार्थ (2nd Potential Mood)--क्रिया के जिस रूप से कर्त्ता का कर्त्तव्य सूचित हो। जैसे--रामको पत्र लिखना चाहिये, चाहिये कि राम पत्र लिखे।

नोट-धातु के प्रत्यययुक्त रूप (नं० २७५) के आगे "चाहिये" या "चाहिये था" क्रिया जोड़ने से अथवा द्वियौगिक काल (नं० ३७९) के रूपों के प्रारम्भ में "चाहिये कि" जोड़ने से "कर्त्तव्यार्थ क्रिया" के रूप बनते हैं।

६. प्रयोग

३९३. प्रयोग (Application)—वाक्य में कर्त्ता, या कर्म के पुरुष, लिंग, और वचन के अनुसार अथवा स्थिर रूप से क्रिया का जो अन्वय अनन्वय (रूपान्तर) होता है उसे 'प्रयोग' कहते हैं।

३९४. (१) कर्तरि प्रयोग (Subjective Application)—जहां क्रिया का रूपान्तर कर्त्ता के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार हो। जैसे--राम जाता है, लड़की जाती है, मैं जाता हूं, हम जाते हैं, लड़कियां जाती हैं।

३९५. (२) कर्मणि प्रयोग (Objective Application)—जहां क्रिया का रूपान्तर कर्म के पुरुष लिंग और वचन के अनुसार हो। जैसे—राम ने किताब पढ़ी, लड़की ने पत्र पढ़ा, मैंने कई पत्र पढ़े, किताब पढ़ी गई, पत्र पढ़ा गया, किताबें पढ़ी गईं।

१. कर्तृवाच्य कर्मणि प्रयोग (Obj. Application in Active Voice)-राम ने किताब पढ़ी।

२. कर्मवाच्य कर्मणि प्रयोग (Obj. Application in passive Voice)—किताब पढ़ी गई।

३९६. (३) भावे प्रयोग (Invariable Application)—जहां क्रिया का रूपान्तर कर्त्ता या कर्म में से किसी के भी पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार न हो, किन्तु जहां क्रिया सदा स्थिर रूप केवल अन्य पुरुष, पुंलिङ्ग और एक वचन में रहे। जैसे--राम ने लड़कियों को बुलाया, लड़की ने अपनी बहनों को मारा, लड़कियों ने लकड़ियों को जलाया, लड़की से दौड़ा नहीं जाता, हम से चला नहीं जाता, नौकर को कचहरी भेजा जाय, लड़कियों को पाठशाला भेजा जायगा। इत्यादि ॥

१. कर्तृवाच्य भावे प्रयोग--लड़की ने अपनी बहनों को मारा, लड़की ने छींका।

२. कर्मवाच्य भावे प्रयोग—लड़कियों को पाठशाला में भेजा जायगा।

३. भाववाच्य भावे प्रयोग--लड़की से दौड़ा नहीं गया।

१०. कृदन्त

३९७. कृदन्त (Verbal Derivations)-क्रिया के जिन रूपों का प्रयोग अन्य शब्द भेदों के समान होता है उन्हें कृदन्त कहते हैं। (नं० १६७)

३९८. (१) विकारी कृदन्त (Declinable or Variable Verbal Derivations)—वे कृदन्त जिन में रूपान्तर होता है। (नं० ३६७)

१. क्रियार्थक संज्ञा (Verbal Noun or Gerund)-वे विकारी कृदन्त जिनका प्रयोग संज्ञा के समान हो।

(१) भाववाचक (Abstract Gerund)—पढ़ना, पढ़ाई, टगाई, लिखावट, पुकार, दौड़, चढ़ाव, चालचलन, चाल, पठनपाठन, लेनदेन, लिखापढ़ी, इत्यादि ॥

(२) करणवाचक (Instrumental Geruud)--कतरनी, घेरा, झूला, छन्ना, झाड़न, झाड़ू, बेलन, इत्यादि।

(३) कर्तृवाचक संज्ञा (Subjective Gorund, or Gerund of Doer)--लेखक, पाठक, उड़िया, गवैया इत्यादि।

(४) कर्मवाचक संज्ञा (Accusative Gerund)—खेल, चटनी, इत्यादि।

(५) अधिकरणवाचक (Locative Geruud)—झिरना, पालना, प्याऊ इत्यादि।

२. क्रियाद्योतक विशेषण (Verbal Adjective or participle)-वे विकारी कृदन्त जिनका प्रयोग विशेषण के समान हो।

(१) वर्त्तमान कालिक विशेषण (Present participle)—भागता, चलती, भागता हुआ, चलती हुई, इत्यादि। जैसे—भागता घोड़ा, चलती रेल, नाचता हुआ लड़का, चलती हुई गाय, इत्यादि।

(२) भूतकालिक विशेषण (Past participle)—मरा हुआ, या मरा हुआ, गिरा हुआ, इत्यादि। जैसे—मरा

लिखापत्र, मरा हुआ हाथी, किया हुआ कार्य, इत्यादि।

(३) भविष्यकालिक विशेषण (Future participle)—आने वाला, जाने वाला, करने वाला। जैसे—कल आने वाला मनुष्य

(४) कर्तृवाचक विशेषण (Participle of Agent)--लिखने वाला, खाने वाला। जैसे--पत्र लिखने वाला मनुष्य, आम खाने वाला लड़का।

(५) कर्मवाचक विशेषण (Accusative participle or Past Perfect participle)--मारा गया, लिखा गया, किया गया, इत्यादि। जैसे—मारा गया शेर, किया गया काम, इत्यादि।

३९९. (२) अविकारी कृदन्त या कृदन्तअव्यय (Indeclinable or Invariable Verbal Derivatives)—वे कृदन्त जिनमें रूपान्तर नहीं होता।

१. पूर्वकालिक कृदन्त (Absolute Verbal Derivative)—खा के, खा कर, खा करके, खा पीकर इत्यादि।

२. तात्कालिक कृदन्त (Present Verbal Derivative)—खाते ही, इत्यादि।

३. अपूर्णक्रियाद्योतक कृदन्त (Continuous Verbal Derivative)—खाते, खाते खाते, खाते हुए, इत्यादि। जैसे—मैंने उसे खाते देखा, वह खाते खाते लेट गया, मैं खाते हुए पत्र भी लिखता जा रहा था, इत्यादि।

४. पूर्णक्रियाद्योतक कृदन्त (Perfect or Complete V. Derivative)—गये, बीते, हुए, इत्यादि। जैसे—वह बहुत रात गये सोया, अवसर बीते अब कुछ नहीं हो सकता, इस काम को हुए बहुत दिन हो गये।

४००. कालरचना (Conjugation)- क्रिया के वाच्य, अर्थ, काल, पुरुष, लिंग और वचन के कारण होने वाले सब रूपों का संग्रह करना 'कालरचना' कहलाता है।

४०१. (१) धातुजन्यकाल--जो काल धातु में या उसके मूलरूप में सहकारी क्रिया होना, रहना, चुकना, सकना या चाहिए के रूप अथवा प्रत्ययों के लगाने से बनें। (नं० ३४९)

४०२. (२) वर्तमानकालिक कृदन्तजन्यकाल—जो काल वर्तमान कालिक कृदन्तों में सहकारी क्रिया 'होना' या रहना आदि के रूप या प्रत्यय लगाने से बनें। (नं० ३६७)

४०३. (३) भूतकालिक कृदन्तजन्यकाल—जो काल भूतकालिक कृदन्तों में सहकारी क्रिया 'होना' या रहना आदि के रूप लगाने से बने। (नं० ३५०)

४०४. (४) साधारणकाल--जो काल केवल प्रत्ययों के लगाने से बनें। (नं० ३८०, ३५२, ३७४)।

४०५. (५) संयुक्तकाल या संयुक्तक्रियाजन्यकाल—जो काल सहकारीक्रिया 'होना', रहना, चुकना, आदि के लगाने से बनें। (नं० ३४९)

४०६. संयोगीक्रिया (Compound Verb)—जो क्रिया कृदन्त और क्रिया इन दो के योग से बने और जिसका मुख्य अंग 'कृदन्त' अर्थात् पूर्व का अंग हो उसे संयोगीक्रिया अथवा संयुक्तक्रिया भी कहते हैं। जैसे--जासकना, लेचुकना, मारदेना, जालगना, करने लगना, जानेदेना, आपड़ना, खाबैठना, समझजाना, समझलेना, काँपउठना, देडालना, पढ़पाना, सोरहना, इत्यादि। (नं० २७४)

नोट—जहाँ कृदन्त मुख्य अंग नहीं होता किन्तु पूर्वकालिक क्रिया का काम देता है तो ऐसे कृदन्त और क्रिया के योग से बने रूप को 'संयुक्तक्रिया' नहीं कहते। जैसे—'काम होगया' इसमें 'हो गया' संयुक्तक्रिया है। और 'लड़का यहां होगया', इसमें 'होगया' संयुक्तक्रिया नहीं है, क्योंकि इस हो गया का अर्थ 'हो कर गया' है जिसमें दूसरा भाग मुख्य है।

४०७. (१) द्विसंयोगीक्रिया—जो संयुक्त क्रियाएँ दो क्रियाओं के संयोग से बनें।

१. शक्तिबोधक या अधिकारबोधक—जा सकना, पढ़ सकना, इत्यादि।

२. पूर्णताबोधक या समाप्तिबोधक—करचुकना, खाचुकना, इत्यादि।

३. आरम्भबोधक—लिखनेलगना, पढ़नेलगना, इत्यादि।

४. अनुमतिबोधक या आज्ञाबोधक—लिखनेदेना, पढ़नेदेना, इत्यादि।

५. अवकाशबोधक—पढ़पाना, करपाना, इत्यादि।

६. अवधारणबोधक या विशिष्टताबोधक या निश्चयबोधक—कौंधउठना, पढ़लेना, खाजाना, लेबैठना, मारदेना, इत्यादि।

७. अपूर्णताबोधक—सोतेरहना, खातेरहना, बढ़ता जाना, इत्यादि।

८. तत्परताबोधक—फटोजाना, मराजाना, इत्यादि।

९. अभ्यासबोधक—देखाकरना, खेलाकरना, इत्यादि।

१०. इच्छाबोधक—खायाचाहना, खेलाचाहना, इत्यादि।

११. निकटताबोधक—आयाचाहना, बजाचाहना, इत्यादि।

१२. निरन्तरताबोधक—कियेजाना, पढ़े जाना, इत्यादि।

१३. नामबोधक या संज्ञायौगिक—मरमहीना, दमभरना, हँसीकरना, दिखाईदेना।

१४. विशेषण यौगिक—पूर्ण करना, छोटा करना, बड़ा बनाना, नीचा दिखाना।

१५. द्विरुक्ति दर्शक—दे देना, ले लेना, इत्यादि।

१६. पुनरुक्ति दर्शक—लिखना पढ़ना, खाना पीना, धरना उठाना, देना लेना, जाना आना, समझना बूझना, करना धरना, मिलना जुलना, पूछना ताछना, होना हुवाना, देखना भालना, पीसना कोटना, इत्यादि।

४०८. (२) बहु संयोगी क्रिया—उठा ले जाना, उठा ले भागना, खाते पीते रहना, खा पी लेना, खा पी चुकना, खाते पीते रहा करना, खाते पीते रह सकना, खाते पीते रह चुकना, खाते पीते चले जाना, खाते पीते चले जा सकना।

समास

४०९. समास (Compound or Aggregation)—दो या अधिक शब्दों के ऐसे योग को जिस में प्रत्ययों का लोप हो 'समास' कहते हैं। [इसके मूल भेद ५ और उत्तर भेद ३० (१+१८+४+६+१) अथवा अनेक हैं। सं० ४१२, ४१३, ४१६, ४२१, ४२२]॥

४१०. सामासिक शब्द (Compound words)—दो या अधिक शब्दों के समास से जो स्वतंत्र शब्द बनते हैं उन्हें 'सामासिक शब्द' कहते हैं। जैसे—प्रतिदिन घुड़दौड़, नीलकमल, त्रिलोक, माँ बाप, दशानन, इत्यादि॥

४११. विग्रह (Expounding)--सामासिक शब्दों का संबन्ध व्यक्त कर दिखाने की रीति को 'विग्रह' कहते हैं। जैसे--प्रतिदिन = प्रत्येक दिन, घुड़दौड़ = घोड़ों की दौड़, माँ बाप = माँ और बाप, इत्यादि ॥

४१२. (१) अव्ययीभाव समास (Indeclinable Compound or Adverbial Compound)—जिस समास में अव्यय का योग किसी अन्य शब्द के साथ होकर या दो समान शब्दों का योग (द्विरुक्ति) होकर समूचा सामासिक शब्द 'क्रिया-विशेषण अव्यय' का काम दे। जैसे--प्रतिदिन, यथाशक्ति, भरपेट, अनजाने, हाथोंहाथ, मुंहामुंह, एकाएक, मन ही मन, बीचोंबीच, धीरेधीरे, पासपास।

४१३. (२) तत्पुरुष समास (Determinative Compound)—जिस समास में उत्तर पद (दूसरा शब्द) की प्रधानता हो और कर्त्ता व सम्बोधन कारकों को छोड़कर शेष किसी भी कारक के लुप्त चिह्न सहित हो। (इसके मूल भेद २ और उत्तर भेद १८ हैं। नं० ४१४, ४१५) ॥

४१४. १. व्यधिकरण तत्पुरुष समास—जिस तत्पुरुष समास का पूर्वपद कर्त्ता और सम्बोधन कारकों को छोड़कर शेष किसी कारकके लुप्त या प्रकटचिह्नसहित कोई संज्ञा हो और जिस के 'विग्रह' में उसके दोनों शब्दोंमें परस्पर भिन्न विभक्तियां लगती हों—

(१) कर्मतत्पुरुष समास--स्वर्गप्राप्त (स्वर्ग को प्राप्त), देशगत (देश को गया हुआ)।

(२) करणतत्पुरुष समास—ईश्वरदत्त (ईश्वर द्वारा दिया हुआ), तुलसीकृत (तुलसीदास जी द्वारा किया हुआ), कपड़छन (कपड़े द्वारा छना हुआ)।

(३) सम्प्रदान तत्पुरुष समास--कृष्णार्पण (कृष्ण के लिये अर्पण), देशभक्ति (देश के लिये भक्ति), रसोईघर (रसोई के लिये घर)।

(४) अपादान तत्पुरुष समास—ऋणमुक्त (ऋण से मुक्त), पदच्युत (पद से च्युत), देशनिकाला (देश से निकाला)।

(५) सम्बन्ध तत्पुरुष समास--राजपुत्र (राजा का पुत्र), प्रजापति (प्रजा का पति), वनमानुस (वन का मनुष्य)।

(६) अधिकरण तत्पुरुष समास--ग्रामवास (ग्राम में का वसेरा), गृहस्थ (गृह में स्थित), अपबीती (अपने में बीती हुई बात)।

(७) अलुक तत्पुरुष समास—जिस तत्पुरुष समास में पहिले पद की विभक्ति का लोप नहीं होता। इस समास का प्रयोग केवल संस्कृत शब्दों ही में होता है। जैसे—खेचर (आकाश में चलने वाला), युधिष्ठिर (युद्ध में स्थिर रहने वाला)।

(८) उपपद तत्पुरुष समास—जिस तत्पुरुष समास का दूसरा पद ऐसा कृदन्त हो जिसका स्वतंत्र उपयोग न हो सके। जैसे--ग्रन्थकार, तटस्थ, तिलचट्टा।

(९) नञतत्पुरुष समास--जो तत्पुरुष समास निषेधार्थ में शब्दों के पूर्व अ या अन् आदि लगाने से बने। जैसे--अधर्म, अनबन।

४१५. २. समानाधिकरण तत्पुरुष या कर्मधारय समास (Appositional Compound)-जिस तत्पुरुष समास के "विग्रह" में उसके दोनों पदों के साथ एक

ही कर्त्ताकारक की विभक्ति लगता है। और जिसमें अगले पद का विशेष्य विशेषण भाव या उपमान उपमेय भाव सूचित होता है।

(१) विशेष्य विशेषण भाव सूचक कर्मधारय समास—

(क) विशेषण पूर्वपद कर्मधारय—पीताम्बर, नीलकमल, नीलगाय, काली मिर्च सँधानामक।

(ख) विशेषण उत्तर पद कर्मधारय—देशान्तर, पुरुषोत्तम, मुनिवर, नराधम। (पिछले तीन उदाहरण अधिकरण तत्पुरुष समास के भी हो सकते हैं)।

(ग) विशेषणोभयपद कर्मधारय—शीतोष्ण, श्यामसुन्दर, भलाबुरा, ऊँच नीच खटमिट्ठा।

(घ) संख्या पूर्वपद कर्मधारय या द्विगुसमास (Numeral Compound)—त्रिलोक, नवरत्न, पञ्चपदी, पञ्चवटी, नवग्रह, षट्ऋतु चौमासा, पसेरी।

(ङ) मध्यमपदलोपी या लुप्तपद कर्मधारय—घृतान्न (घृतमिश्रित अन्न), दही बड़ा (दही मिश्रित बड़ा), गुड़म्बा (गुड़ में डबाला आम)॥

(२) उपमानोपमेय भावसूचक कर्मधारयसमास—

(क) उपमान पूर्वपद कर्मधारय—चन्द्रमुख (चन्द्र समान मुख), वज्रदेह, प्राणप्रिय, पद्मलोचन, इत्यादि।

(ख) उपमानोत्तरपद कर्मधारय—चरण कमल (कमल समान चरण), पाणि-पल्लव, इत्यादि।

(ग) अवधारण पूर्वपद कर्मधारय—भवसागर (भव रूपी समुद्र), पुरुषरत्न (पुरुष रूपी रत्न), इत्यादि।

(घ) अवधारणोत्तर पद कर्मधारय—साधुसमाज प्रयाग (प्रयाग रूपी साधु समाज), इत्यादि।

४१६ (३) द्वन्द्वसमास (Copulative Compound)—जिस समास में दोनों पद अथवा उनका समाहार प्रधान हो। (इसके ४ भेद हैं। नं० ४१७-४२०)—

४१७ १ इतरेतर द्वन्द्वसमास—जिस द्वन्द्वसमास के दोनों पदों के मध्य 'और' शब्द का लोप हो। जैसे—ऋषिमुनि (ऋषि और मुनि), राधाकृष्ण, अन्नजल, रात दिन, लेनदेन, बेटाबेटी, नाकान।

४१८ २ समाहार द्वन्द्वसमास—जिस द्वन्द्वसमास में उसके पदों के अर्थ के अतिरिक्त उसी प्रकार के अर्थ वाली अन्य वस्तुओं का भी समावेश होसके। जैसे—सेठ साहूकार (सेठ और साहूकार और अन्यान्य धनी लोग भी), रुपया पैसा, दालरोटी, हाथपाँव।

४१९ ३ वैकल्पिक द्वन्द्वसमास—जिस द्वन्द्वसमास के दोनों पदों के मध्य 'या', 'वा', 'अथवा', इन में से किसी शब्द का लोप हो और जिस में प्रायः विरोधी शब्दों का मेल हो। जैसे—पुण्यपाप, जातकुजात, धर्माधर्म, हानिलाभ, शुभाशुभ।

४२० ४ एकशेष द्वन्द्वसमास—जिस द्वन्द्वसमास में दो या अधिक पदों के मेल से

केवल एक ही पद शेष रहे। जैसे--पुत्रौ (पुत्र और पुत्री), बच्चे (बच्चा और बच्ची या बच्चे और बच्चियां), लड़के (लड़का और लड़की)॥

४२१. (४) बहुव्रीहि समास (Relative Compound, or Attributive Compound) जिस समास में कोई भी पद प्रधान नहीं होता किन्तु उसके पदोंके योगसे जो अर्थ सूचित हो उस अर्थवाला कोई अन्य विशेषपद का ग्रहण जिस समास से हो। जैसे--दशानन (दश आननवाला रावण), पंचानन (शिव), चंद्रमौलि (शिव), लम्बोदर (गणेश)। इसके निम्न लिखित ६ भेद हैं:—

१. कर्म बहुव्रीहि समास--धनप्राप्त (प्राप्त है धन जिसको)।

२. करण बहुव्रीहि—जितेन्द्रिय (जीती गई हैं इन्द्रियां जिसके द्वारा)।

३. सम्प्रदान बहुव्रीहि—दत्त धन (दिया गया है धन जिसके लिये)।

४. अपादान बहुव्रीहि—दुर्बल (दूर हो गया है बल जिससे), सिर कटा (कटकर अलग हो गया है सर जिससे)।

५. सम्बन्ध बहुव्रीहि--दशानन (दश हैं आनन जिसके), कनफटा (फटे हैं कान जिसके), बारहसिंगा (बारह हैं सींग जिसके), मथुरावासी (मथुरा में है निवास जिसका), जयपुरिया (जयपुर में था या है निवास जिसका)।

६. अधिकरण बहुव्रीहि--प्रफुल्लकमल (प्रफुल्ल हैं कमल जिसमें), अलोना (नहीं है लोन जिसमें), निःकलङ्क, अधर्मी, इत्यादि।

नोट--इस समास के (१) तद्गुणसंविज्ञान और (२) अतद्गुणसंविज्ञान, यह दो भेद भी हैं। जो समास ऐसे पदों के योग से बना हो जिनका अर्थसूचक लक्षण उस समास-सूचक पदार्थ में दीख पड़े तो उसे "तद्गुणसंविज्ञान समास" कहते हैं। जैसे-ऊपर के उदाहरणों में दुर्बल, सिरकटा, दशानन, इत्यादि। और जो समास ऐसे पदों के योग से बना हो जिनका अर्थसूचक लक्षण उस समाससूचक पदार्थ में प्रत्यक्ष न हो गुप्त रूप से हो तो उसे "अतद्गुणसंविज्ञान समास" कहते हैं। जैसे—ऊपर के उदाहरणों में दशानन, मथुरावासी, जयपुरिया इत्यादि॥

४२२. (५) केवलसमास (Mere Compound)--जिन समासों का कोई विशेष नाम नहीं है वे सब 'केवलसमास' कहाते हैं॥

वाक्य विन्यास

(Syntax नं० २३)

४२३. वाक्य (Sentence)--जिस सार्थक पद या पदसमूह से कोई एक विचार पूर्णता से प्रकट हो उसे 'वाक्य' कहते हैं। (नं० ४२६)॥

४२४. अन्वय (Agreement)--किसी वाक्य के अन्तर्गत दो शब्दों में लिंग, वचन, पुरुष, कारक, या काल की जो परस्पर समानता रहती है उसे 'अन्वय' कहते हैं॥

४२५. अन्वित शब्द (Words agreed)—किसी वाक्य में जिन शब्दों में

लिंग, वचन, पुरुष, कारक, या काल की समानता रहती है वे परस्पर एक दूसरे से उसी समानता की अपेक्षा 'अन्वित शब्द' कहलाते हैं।

४२६. अधिकार (Government or Governance)—वाक्य में जिस सम्बन्ध के कारण किसी एक शब्द के प्रयोगसे दूसरे संज्ञावाचक या सर्वनामवाचक शब्द किसी विशेष कारक में आते हैं उसे 'अधिकार' कहते हैं। जैसे—लड़का बन्दर से डरता है, लड़का बन्दर को मारता है, लड़का बन्दर के लिये रोटी देता है, लड़का बन्दर के द्वारा नोटिस भटवाता है, इत्यादि। यहां अलग अलग क्रियाओं के कारण 'बन्दर' शब्द अलग अलग कारकों में आता है। (नं० ३२०-३३२)॥

४२७. क्रम (Order)--वाक्य में शब्दों को उनके अर्थ और सम्बंध की प्रधानता के अनुसार यथास्थान रखने को 'क्रम' कहते हैं॥

४२८. वाक्य रचना (Formation of a Sentence)—शब्दों को उनके अर्थ और प्रयोग के अनुसार यथाक्रम रख कर वाक्य बनाने की रीति को 'वाक्य रचना' कहते हैं॥

४२९. पद (A Complete or Inflected word)—प्रत्यय सहित सार्थक शब्द को अथवा विभक्तियुक्त शब्द को "पद" कहते हैं (नं० १९३-१९६, ३३३)। किसी छन्द के प्रत्येक चरण को भी 'पद' कहते हैं। (पद्य. नं० ११)॥

४३०. पदपरिचय या पदव्याख्या (Parsing)—व्याकरण शास्त्र की सहायता से उसके नियमों के अनुसार वाक्य के प्रत्येक शब्द का शब्दभेद आदि प्रकट करने की प्रक्रिया को "पदपरिचय" या "पदव्याख्या" कहते हैं। (नं० २०८)॥

४३१. पदव्यवस्था या पदान्वय—पदपरिचय या पदव्याख्या ही को "पदव्यवस्था" या "पदान्वय" भी कहते हैं (नं० ४१०)॥

४३२. वाक्य पृथक्करण या वाक्यच्छेद (Analysis)—वाक्य के अवयवों (पदों) को उनका परस्पर सम्बन्ध दिखाने के लिये उनके अर्थ और प्रयोग के अनुसार अलग अलग करने की रीति को 'वाक्य पृथक्करण' या 'वाक्यच्छेद' कहते हैं॥

४३३. वाक्य-स्पष्टीकरण (Elucidation, making a Sentence Intelligible)--यथार्थ वाक्यार्थ समझने के लिये वाक्यपृथक्करण और शब्दव्याख्या या पदपरिचय द्वारा शब्दों के परस्पर के सम्बन्ध आदि को जानने की प्रक्रिया को 'वाक्यस्पष्टीकरण' कहते हैं। (नं० ४३१, ४३२)॥

४३४. अध्याहार (Filling or Supplying the Ellipses)—किसी संक्षिप्त वाक्य को (अथवा संकुचित वाक्य को भी) पूर्ण करने के लिये छूटे हुये शब्दों के लगाने या खोजने को 'अध्याहार' कहते हैं (नं० ४८४, ४८५)॥

४३५. अध्याहृत शब्द (Omitted Words, or Ellipses)--संक्षिप्त वाक्य की पूर्त्ति के लिये जिन शब्दों को खोज कर लगाया जाय उन्हें 'अध्याहृत शब्द' कहते हैं। (नं० ४३४)

४३६. समाहार (Contraction or Conciseness of two or more Simple Sentences)--दो या अधिक साधारण वाक्यों को संग्रह कर एक 'संकुचित वाक्य' (अथवा युक्त-वाक्य या मिश्रवाक्य या संयुक्तवाक्य) बना देने को 'समाहार' कहते हैं। (नं०४८०-४८

४३७. समाहृत वाक्य (Contracted or Concised Sentence)-दो या अधिकसाधारण वाक्यों का समाहार करके जो एक संकुचित वाक्य बनाया जाय उसे 'समाहृत वाक्य' कहते हैं। (नं० ४८०-४८४) ॥

४३८. लोप (Elision or Dropping)--वाक्य में किसी शब्द के या शब्द में किसी अक्षर के अदर्शन या उसकी अव्यक्ति को 'लोप' कहते हैं ॥

४३९. अपवाद (An Exception)--नियम बाह्य या विशेष नियम वाले शब्द आदि को 'अपवाद' कहते हैं। नियमानुकूल या साधारण नियमबद्ध शब्द आदि को 'उत्सर्ग' कहतेहैं॥

४४०. गौरव (Emphasis)--वाक्य में किसी विशेष शब्द पर अधिक बल देकर बोलने को "गौरव" कहते हैं।

४४१. मुख्य वाक्याङ्ग या वाक्यविभाग (Essential Parts of a Sentence)—प्रत्येक साधारण वाक्य, या अमिश्रितवाक्य (नं० ४८०) जिन दो अङ्गों या विभागों का समूह होता है उन्हें "मुख्य वाक्यांग" या "मुख्य वाक्य विभाग" कहते हैं। वाक्य के मुख्याङ्ग "उद्देश्य" और "विधेय" हैं। (नं. ४४२,४४५) ॥

४४२. उद्देश्य (Subject)—वाक्य में जिसके विषय में कुछ विधान कियाजाय अर्थात् कुछ कहाजाय उसे सूचित करने वाले शब्द या शब्दों को "उद्देश्य" कहते हैं। जैसे--(१) मैं आया (२) यह धोबी बड़ा भला मनुष्य है (३) आप का पुत्र मोहन अपनी पुस्तक मुझको देता है (४) धर्मज्ञ कृष्ण ने उसे और मुझे पढ़ा लिखाकर पूर्ण विद्वान बना दिया (५) वह हँसता हुआ छोटा बालक पाठशाला में अपनी छोटी पुस्तक धीरे धीरे य द कररहा है। इन वाक्यों में क्रम से—मैं, यह धोबी, आपको पुत्र मोहन, धर्मज्ञ कृष्ण, वह हँसता हुआ छोटा बालक, "उद्देश्य" हैं ॥

४४३. (१) मूल उद्देश्य या साधारण उद्देश्य (Pure Subject, or Simple Subject)—विशेषणों को छोड़कर उद्देश्य के मूल भाग को "मूल उद्देश्य" या "साधारण-उद्देश्य"कहते हैं। जैसे—नं० ४४२के उदाहरणों में क्रम से--मैं, धोबी,मोहन, कृष्ण, बालक, "मूल उद्देश्य" हैं ॥

४४४. (२) उद्देश्य वर्द्धक या उद्देश्य का विस्तार (Attributive Adjuncts to Subject,or Enlargement of Subject)-मूल उद्देश्य के विशेषण या विशेषणों को तथा विभक्ति सहित सम्बन्ध कारक को (यदि कोई हों) "उद्देश्य वर्द्धक" या "उद्देश्य का विस्तार" कहते हैं। जैसे--नं० ४४२ के अन्तिम ४ उदाहरणों में क्रम से--यह, आपका पुत्र, धर्मज्ञ, वह हँसता हुआ छोटा, "उद्देश्य वर्द्धक" हैं ॥

४४५. विधेय (Predicate)—वाक्य में उद्देश्य के सम्बन्ध में जो कुछ विधान किया जाय उसे सूचित करने वाले शब्द या शब्दों को "विधेय" कहते हैं। जैसे--नं० ४४२ के उदाहरणों में क्रम से—आया, बड़ा भला मनुष्य है, अपनी पुस्तक मुझको देता है, उसे और मुझे पढ़ लिखाकर पूर्ण विद्वान बनादिया, पाठशाला में अपनी छोटी पुस्तक धीरे धीरे याद कर रहा है, "विधेय" हैं ॥

४४६. (१) मूलविधेय या केवल क्रिया (Finite Verb)—विधेय की समाप्तिका क्रिया

(नं० २६१) को 'मूलविधेय' या "केवलक्रिया' कहते हैं। जैसे--नं० ४४२ के उदाहरणों में क्रम से--आया, है, देता है, बनादिया, याद कर रहा है, "मूल-विधेय" हैं॥

४४७. (२) विधेयपूरक (Object or Complement with attributives)--विधेय की समापिका क्रिया के सविशेषण मुख्यकर्म, गौणकर्म, सजातीयकर्म और पूर्ति को (वाक्य में यदि कोई हों) "विधेय पूरक" कहते हैं। (नं० २८४-२८३)। जैसे-नं० ४४२ के अन्तिम ४ उदाहरणों में क्रम से--बड़ा भला मनुष्य अपनी पुस्तक मुझको, उसे और मुझे पूर्ण विद्वान, अपनी छोटी पुस्तक, "विधेयपूरक" हैं॥

४४८ (३) विधेयवर्द्धक या "विधेय विस्तार (Adverbial Adjuncts or Extension of Predicate)--विधेय की समापिका क्रिया से सम्बन्ध रखने वाले क्रिया विशेषणों को अथवा क्रियाविशेषण का काम देने वाले अन्य शब्दभेदों या या क्यांशों को तथा विभक्तियुक्त करण, अधिकरण व अपादान कारकों को "विधेय-वर्द्धक" कहते हैं (नं० २६५-२६८,४५७)। जैसे--नं० ४४२ के अन्तिम दो उदाहरणों में क्रम से--पढ़ालिखाकर, पाठशाला में धीरे धीरे॥

४४९. उपवाक्य (Clause)--जब एक बड़ा वाक्य दो या अधिक साधारण वाक्यों से किसी व्यक्त या अव्यक्तरूप समुच्चय बोधक अव्यय द्वारा जुड़कर बना हो तो उन साधारण वाक्यों में से प्रत्येक को 'उपवाक्य' कहते हैं। (नं० ३०२, ४८०)। उपवाक्यों के मूल भेद दो हैं (नं० ४५०, ४५१, ४५२)॥

४५० समानाधिकरण उपवाक्य (Co ordinate clauses or Independent Clauses)--समानाधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय या अव्ययों से जुड़े हुए दो या अधिक उपवाक्यों को जो एक दूसरे पर आश्रित नहीं होते 'समानाधिकरण उपवाक्य' कहते हैं (नं० ३०३, ४१६, ४८१)॥

४५१. निराश्रय उपवाक्य या स्वतंत्र उपवाक्य--समानाधिकरण उपवाक्यों ही को निराश्रय उपवाक्य' या "स्वतंत्र उपवाक्य" भी कहते हैं (नं० ४५०)॥

४५२ आश्रित उपवाक्य (Sub ordinate Clause or Dependent Clause)--व्यधिकरण समुच्चय बोधक अव्यय या अव्ययों से जुड़े हुए दो या अधिक उपवाक्यों में से जो जो उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के आश्रित हों उन्हें 'आश्रितउपवाक्य' कहते हैं (नं० ३०४, ४१६, ४८२)। आश्रित उपवाक्य के ३ भेद हैं (नं० ४५३, ४५४, ४५५)॥

४५३ (१) संज्ञा उपवाक्य (Noun Clause)--जो आश्रितउपवाक्य अपने मुख्य उपवाक्य की किसी संज्ञा (संज्ञा वाक्यांश नं० ४५७) का कार्य करे : अर्थात् जो मुख्य उपवाक्य की क्रिया का उद्देश्य या कर्म अथवा पूरक आदि का काम दे। जैसे--उसने मुझ से कहा कि मैं बनारस जाता हूं। इस वाक्य में दूसरा उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की सकर्मक क्रिया 'कहा' के कर्म 'बनारस जाने की बात' के बदले आया है। जो मनुष्य चोरी करता है अवश्य दंड पाता है। यहां पहिला उपवाक्य 'पाता है' क्रिया का उद्देश्य है जो कि 'चोरी करने वाला मनुष्य' के बदले आया है

(नं० ४५२, ४५६, ४५८) ॥

४५४. (२) विशेषण उपवाक्य (Adjectival Clause)--जो आश्रित उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की किसी संज्ञा की विशेषता प्रकट करे। जैसे--वह मनुष्य अवश्य दंड पाता है जो चोरी करता है। यहां दूसरा उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की एक संज्ञा 'मनुष्य' की विशेषता प्रकट करता है और 'चोरी करने वाला' के बदले आया है। (नं० ४५२, ४५६, ४५८) ॥

४५५. (३) क्रियाविशेषण उपवाक्य (Adverbial Clause)--जो आश्रित उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की क्रिया की कुछ विशेषता दिखावे। जैसे--जब सूर्य उदय हुआ मैं जाग गया। यहां पहिला उपवाक्य दूसरे मुख्य उपवाक्य की क्रिया 'जाग गया' का 'कालवाचक क्रियाविशेषण' है जो 'सूर्य उदय होने के समय' के बदले आया है॥ (४५२, ४५६, ४६०) ॥

४५६. मुख्य उपवाक्य (Principal Clause)--व्यधिकरण समुच्चय बोधक अव्यय या अव्ययों से जुड़े हुए दो या अधिक उपवाक्यों में जिस उपवाक्य के आश्रित एक या अधिक अन्य उपवाक्य हों उसे 'मुख्य-उपवाक्य' कहते हैं। जैसे नं० ४५५ के उदाहरण में 'मैं जाग गया' मुख्य उपवाक्य है । [समानाधिकरण या निराश्रय उपवाक्यों की गणना भी मुख्य उपवाक्यों में की जा सकती है (नं० ४५०, ४५१)] ॥

४५७. वाक्यांश (Phrase)--दो या अधिक शब्दों के ऐसे सार्थक संग्रह को जिस से कोई पूर्ण विचार प्रकट न हो वाक्यांश कहते हैं। इसके तीन भेद हैं (नं० ४५८,४५९,४६०) ॥

४५८. [१] संज्ञावाक्यांश (Noun Phrase)--जो वाक्यांश संज्ञा का काम दें। जैसे--भेड़ बकरियों का गल्ला, ऊँचा मकान, थका हुआ पंथी, नींद भर सोना, इत्यादि ॥

४५९. [२] विशेषण वाक्यांश (Adjectival Phrase)--जो वाक्यांश विशेषण का काम दें। जैसे--दिन भर का थका हुआ, पर्वत समान ऊँचा, गज़ भर लम्बा, बड़े उत्साह और परिश्रम के साथ काम करने वाला, इत्यादि ॥

४६०. [३] क्रियाविशेषण वाक्यांश [Adverbial Phrase]--जो वाक्यांश क्रिया-विशेषण का काम दें। जैसे--बड़े परिश्रम पूर्वक, दिल्ली से बम्बई तक, सूर्य उदय होने के समय, पत्र लिख लेने के पश्चात, इत्यादि ॥

वाक्य भेद

(१) अर्थापेक्षा वाक्य भेद

४६१ (१) विधानार्थक वाक्य (Affirmative Sentence), जिससे किसी विधान का होना पाया जाय। जैसे--राम आया, राम पत्र लिखता है, इत्यादि ॥

४६२. (२) निषेधार्थक वाक्य (Negative Sentence), जिससे किसी विधान का न होना पाया जाय। जैसे--राम नहीं आया, राम पत्र नहीं लिखता है, इत्यादि ॥

४६३. (३) आज्ञार्थक वाक्य (Imperative Sentence), जिस से कोई आज्ञा, प्रार्थना, विनती या उपदेश सूचित हो। (नं. ४६४,४६५) ॥

४६४. १. विधानसूचक आज्ञार्थक वाक्य, जैसे--उसे ले आओ, मुझे रुपया दे दीजिये,

सत्य बोला करो, इत्यादि ॥

४६५. २ निषेध सूचक आज्ञार्थक वाक्य, जैसे—उसे मत लाओ, मुझे रुपया न दीजिये, असत्य न बोला करो, इत्यादि ॥

४६६ (४) प्रश्नार्थक वाक्य (Interrogative Sentence), जिससे किसी प्रकार का विधि या निषेध सूचक प्रश्न किया जाना सूचित हो । जैसे—(१) क्या आप कानपुर जारहे हैं ? क्या आप कानपुर नहीं जारहे हैं ? (२) आप कानपुर ही जारहे हैं न ? आप कानपुर तो नहीं जारहे हैं न ? (३) क्या आप कभी मृत्यु के गाल में न जायंगे ? क्या आप सदा ही जीते रहेंगे ? (४) आप कहां जारहे हैं ? आप कानपुर क्यों नहीं जाते ? (५) कौन नहीं जानता कि एक दिन सब को मरना है ? कौन मनुष्य ऐसा है जो सदैव जीवित रहसके ? इत्यादि ॥

४६७ (५) विस्मयादि बोधक वाक्य (Exclamatory Sentence), जिस से विस्मय, आश्चर्य, हर्ष विषाद घृणा, या अन्य कोई आकस्मिक भाव प्रकट हो । जैसे—देखिये यह आकाश से बातें करता हुआ कितना ऊँचा महल है ! आहा, यह कैसा सुन्दर और रमणीय स्थान है ! अरे ! यह एकदम क्या हो गया !! छि छिः ! परे हट !! इत्यादि ॥

४६८ (६) इच्छाबोधक वाक्य (Desiderative or Solicitative Sentence), जिससे इच्छा या आशीष सूचित होती है । (नं० ४६९, ४७०) ॥

४६९. १. विधानार्थक इच्छाबोधक वाक्य, जैसे—किसी प्रकार इसका कष्ट दूर होजाय; ईश्वर तुम्हारा भला करे ॥

४७० २. निषेधार्थक इच्छाबोधक वाक्य, जैसे—मेरे द्वारा कभी किसी प्राणी को कष्ट न हो; ईश्वर तुम्हें कभी सन्ताप न दे ॥

४७१. (७) सन्देहबोधक वाक्य (Doubtful Sentence), जिससे कोई संदेह या संभावना सूचित हो । (नं० ४७२, ४७३) ॥

४७२ १. विधानार्थक सन्देहबोधक वाक्य, जैसे—वह आरहा होगा; कदाचित् आज मेंह बरसे ॥

४७३ २ निषेधार्थक सदेहबोधक वाक्य, जैसे—वह अभी नहीं आ रहा होगा; कदाच आज पानी न बरसे ॥

४७४. (८) सङ्केतबोधक वाक्य या अन्यान्वित वाक्य (Conditional Sentence), जिससे कोई संकेत (शर्त) सूचित हो । (नं० ३६०, ४७५, ४७६) ॥

४७५. १ विधानार्थक संकेतबोधक वाक्य, जैसे—आप कहें तो मैं जाऊं, आप मना करेंगे तो मैं रुक जाऊँगा (नं० ३७५) ॥

४७६. २. निषधार्थक संकेतबोधक वाक्य, जैसे—आप मना करें तो मैं न जाऊँ, आप न कहेंगे तो मैं न जाऊँगा ॥

(२) वाक्यापेक्षा वाक्य भेद

४७७. (१) कर्तृवाच्य वाक्य या कर्तृप्रधानवाक्य—जिस वाक्य में क्रिया के कर्तृवाच्य रूप का प्रयोग किया जाय (नं० ३४०) ॥

४७८. (२) कर्मवाच्य वाक्य या कर्मप्रधानवाक्य—जिस वाक्य में क्रिया के कर्मवाच्य रूप का प्रयोग किया जाय (नं० ३४६) ॥

४७९. (३) भाववाच्य वाक्य या भावप्रधान वाक्य—जिस वाक्य में भाववाच्य क्रिया का प्रयोग किया जाय (नं० ३४७) ॥

(३) रचनापेक्षा वाक्य भेद

४८०. (१) साधारणवाक्य या अमिश्रितवाक्य (Simple Sentence), जिस में केवल

(नं० ४५२, ४५६, ४५८) ॥

४५४. (२) विशेषण उपवाक्य (Adjectival Clause)--जो आश्रित उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की किसी संज्ञा की विशेषता प्रकट करे। जैसे--वह मनुष्य अवश्य दंड पाता है जो चोरी करता है। यहां दूसरा उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की एक संज्ञा 'मनुष्य' की विशेषता प्रकट करता है और 'चोरी करने वाला' के बदले आया है। (नं० ४५२, ४५६, ४५९) ॥

४५५. (३) क्रियाविशेषण उपवाक्य (Adverbial Clause)--जो आश्रित उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की क्रिया की कुछ विशेषता दिखावे। जैसे--जब सूर्य उदय हुआ मैं जाग गया। यहां पहिला उपवाक्य दूसरे मुख्य उपवाक्य की क्रिया 'जाग गया' का 'कालवाचक क्रियाविशेषण' है जो 'सूर्य उदय होने के समय' के बदले आया है॥ (४५२, ४५६, ४६०) ॥

४५६. मुख्य उपवाक्य (Principal Clause)--व्यधिकरण समुच्चय बोधक अव्यय या अव्ययों से जुड़े हुए दो या अधिक उपवाक्यों में जिस उपवाक्य के आश्रित एक या अधिक अन्य उपवाक्य हों उसे 'मुख्य-उपवाक्य' कहते हैं। जैसे नं० ४५५ के उदाहरण में 'मैं जाग गया' मुख्य उपवाक्य है । [समानाधिकरण या निराश्रय उपवाक्यों की गणना भी मुख्य उपवाक्यों में की जा सकती है (नं० ४५०, ४५१)] ॥

४५७. वाक्यांश (Phrase)--दो या अधिक शब्दों के ऐसे सार्थक संग्रह को जिस से कोई पूर्ण विचार प्रकट न हो वाक्यांश कहते हैं। इसके तीन भेद हैं (नं० ४५८,४५९,४६०) ॥

४५८. [१] संज्ञावाक्यांश (Noun Phrase)--जो वाक्यांश संज्ञा का काम दें। जैसे--भेड़ बकरियों का गल्ला, ऊँचा मकान, थका हुआ पंथी, नींद भर सोना, इत्यादि ॥

४५९. [२] विशेषण वाक्यांश (Adjectival Phrase)--जो वाक्यांश विशेषण का काम दें। जैसे--दिन भर का थका हुआ, पर्वत समान ऊँचा, गज भर लम्बा, बड़े उत्साह और परिश्रम के साथ काम करने वाला, इत्यादि ॥

४६०. [३] क्रियाविशेषण वाक्यांश [Adverbial Phrase]--जो वाक्यांश क्रिया-विशेषण का काम दें। जैसे--बड़े परिश्रम पूर्वक, दिल्ली से बम्बई तक, सूर्य उदय होने के समय, पत्र लिख लेने के पश्चात, इत्यादि ॥

वाक्य भेद

(१) अर्थापेक्षा वाक्य भेद

४६१ (१) विधानार्थक वाक्य (Affirmative Sentence), जिससे किसी विधान का होना पाया जाय। जैसे--राम आया, राम पत्र लिखता है, इत्यादि ॥

४६२. (२) निषेधार्थक वाक्य (Negative Sentence), जिससे किसी विधान का न होना पाया जाय। जैसे--राम नहीं आया, राम पत्र नहीं लिखता है, इत्यादि ॥

४६३. (३) आज्ञार्थक वाक्य (Imperative Sentence), जिस से कोई आज्ञा, प्रार्थना, विनती या उपदेश सूचित हो। (नं. ४६४,४६५) ॥

४६४. १. विधानसूचक आज्ञार्थक वाक्य, जैसे--उसे ले आओ. मुझे रुपया दे दीजिये,

सत्य बोला करो, इत्यादि ॥

४६५. २ निषेध सूचक आज्ञार्थक वाक्य, जैसे—उसे न लाओ, मुझे रुपया न दीजिये, असत्य न बोला करो, इत्यादि ॥

४६६ (४) प्रश्नार्थक वाक्य (Interrogative Sentence), जिससे किसी प्रकार का विधि या निषेध सूचक प्रश्न किया जाना सूचित हो । जैसे--(१) क्या आप कानपुर जारहे हैं ? क्या आप कानपुर नहीं जारहे हैं ? (२) आप कानपुर ही जारहे हैं न ? आप कानपुर तो नहीं जारहे हैं न ? (३) क्या आप कभी मृत्यु के गाल में न जॉयगे ? क्या आप सदा ही जीते रहेंगे ? (४) आप कहां जारहे हैं ? आप कानपुर क्यों नहीं जाते ? (५) कौन नहीं जानता कि एक दिन सब को मरना है ? कौन मनुष्य ऐसा है जो सदैव जीवित रहसके ? इत्यादि ॥

४६७ (५) विस्मयादि बोधक वाक्य (Exclamatory Sentence), जिस से विस्मय, आश्चर्य, हर्ष विषाद घृणा, या अन्य कोई आकस्मिक भाव प्रकट हो । जैसे--देखिये यह आकाश से बातें करता हुआ कितना ऊँचा महल है ! आहा, यह कैसा सुन्दर और रमणीय स्थान है ! अरे ! यह एकदम क्या हो गया !! छि छिः ! परे हट !! इत्यादि ॥

४६८ (६) इच्छाबोधक वाक्य (Desiderative or Solicitative Sentence), जिससे इच्छा या आशीष सूचित होती है । (नं० ४६९, ४७०) ॥

४६९. १. विधानार्थक इच्छाबोधक वाक्य, जैसे—किसी प्रकार इसका कष्ट दूर होजाय; ईश्वर तुम्हारा भला करे ॥

४७० २. निषेधार्थक इच्छाबोधक वाक्य, जैसे—मेरे द्वारा कभी किसी प्राणी को कष्ट न हो; ईश्वर तुम्हें कभी सन्तान न दे ॥

४७१. (७) सन्देहबोधक वाक्य (Doubtful Sentence), जिससे कोई संदेह या संभावना सूचित हो । (नं० ४७२, ४७३) ॥

४७२ १. विधानार्थक सन्देहबोधक वाक्य, जैसे—वह आरहा होगा; कदाचित् आज मेंह बरसे ॥

४७३. २ निषेधार्थक संदेहबोधक वाक्य, जैसे--वह अभी नहीं आ रहा होगा, कदाच आज पानी न बरसे ॥

४७४. (८) संकेतबोधक वाक्य या अन्यान्वित वाक्य (Conditional Sentence), जिससे कोई संकेत (शर्त) सूचित हो । (नं० ३६०, ४७१, ४७६) ॥

४७५. १ विधानार्थक संकेतबोधक वाक्य, जैसे--आप कहें तो मैं जाऊं, आप मना करेंगे तो मैं रुक जाऊँगा (नं० ३४५) ॥

४७६. २. निषेधार्थक संकेतबोधक वाक्य, जैसे--आप मना करें तो मैं न जाऊँ, आप न कहेंगे तो मैं न जाऊँगा ॥

(२) वाक्यापेक्षा वाक्य भेद

४७७. (१) कर्तृवाच्य वाक्य या कर्तृप्रधानवाक्य—जिस वाक्य में क्रिया के कर्तृवाच्य रूप का प्रयोग किया जाय (नं० ३४०) ॥

४७८. (२) कर्मवाच्य वाक्य या कर्मप्रधानवाक्य—जिस वाक्य में क्रिया के कर्मवाच्य रूप का प्रयोग किया जाय (नं० ३४६) ॥

४७९. (३) भाववाच्य वाक्य या भावप्रधान वाक्य--जिस वाक्य में भाववाच्य क्रिया का प्रयोग किया जाय (नं० ३४७) ॥

(३) रचनापेक्षा वाक्य भेद

४८०. (१) साधारणवाक्य या अमिश्रितवाक्य (Simple Sentence), जिस में केवल

एक उद्देश्य और एक समापिकाक्रिया या विधेय हो। जैसे—मैं आया; उस पापी दुराचारी मनुष्य ने अपनी जेब से एक तेज़ चाकू निकाल कर इस ग़रीब छोटे से बालक के उदर में तुरन्त ही बड़ी शीघ्रता से गुभो दिया॥

४८१. (२) संयुक्तवाक्य या युक्तवाक्य (Compound Sentence), जिस में दो या अधिक समानाधिकरण उपवाक्यों का योग किसी 'समानाधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय द्वारा हो। जैसे-मैं आया और एक पत्र लिखा। मैं ने एक पत्र लिखा परन्तु राम ने कोई काम न किया। यहां बैठो या घर चले जाओ (नं० ४५०)॥

४८२. (३) मिश्रवाक्य (Complex Sentence), जिसमें एक 'मुख्य उपवाक्य' और एक या अधिक 'आश्रित उपवाक्यों' का योग किसी व्यधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय द्वारा हो। जैसे--जब मैं आया तभी राम चला गया। मैं आज ही कानपुर जाऊंगा, क्योंकि वहां मुझे राम से मिलना है जो कल वहां से बम्बई चला जायगा (नं० ४५२, ४५६)॥

४८३. (४) संसृष्ट वाक्य (Mixed Sentence), जिसमें साधारण और मिश्रवाक्यों का, या संयुक्त और मिश्रवाक्यों अथवा कई मिश्रवाक्यों का संयोग हो। जैसे--मैं आया था, परन्तु जब आप देर तक न आये तो मैं चला गया। मोहन न तो स्वयं आया और न किसी अन्य पुरुष को मेरे पास भेजा, परन्तु डाक द्वारा एक पत्र भेज दिया जिसमें लिखा था कि "मैं अभी कई दिन तक न आ सकूंगा, इस लिये आपही तुरन्त चले आवें, नहीं तो काम बिगड़ जायगा और इसलिये फिर पछताना पड़ेगा"॥

४८४. (५) संकुचित वाक्य या संकीर्णवाक्य (Concise Sentence), जिस वाक्य में (१) एक उद्देश्य और दो या अधिक विधेय हों (२) एक विधेय और दो या अधिक उद्देश्य हों (३) एक उद्देश्य के दो या अधिक उद्देश्यवर्द्धक हों (४) एक विधेय के दो या अधिक कर्म हों (५) एक विधेय की दो या अधिक पूर्तियां हों (६) एक विधेय के दो या अधिक विधेयविस्तारक हों (७) एक कर्म के दो या अधिक विशेषण हों (८) एक पूर्त्ति के दो या अधिक विशेषण हों, इत्यादि। जैसे--(१) राम ने पत्र लिखा और उसे डाक में डाल दिया। (२) राम और कृष्ण ने पत्र लिखे। (३) इस वीर और तेजस्वी पुरुष ने उसे परास्त कर दिया। (४) इसने राम और कृष्ण को बुलाया। (५) राम बड़ा गुणी, सुबुद्धी और वीर है। (६) राम ने बड़ी बुद्धिमता से और बड़े परिश्रम से इस काम को किया है। (७) राम ने गुणी और परिश्रमी बालकों को पारितोषिक दिया। (८) राम ने उसे थोड़े ही दिनों में विद्वान् और कार्य कुशल मनुष्य बना दिया, इत्यादि॥

४८५. (६) संक्षिप्तवाक्य (Elliptical Sentence)--जिस वाक्य में उस वाक्य ही से या उसके पूर्वा-पर सम्बन्ध से सहज ही में जान लेने योग्य उद्देश्य को या विधेयको अथवा इसमें से किसी के कुछ भाग को संक्षिप्तता या गौरवके लिये छोड़ दियाजाता है उसे 'संक्षिप्त वाक्य' कहते हैं। जैसे-आ रहा हूं। क्या लखनऊ कल जाओगे। सुना है कि आप बम्बई जाँयगे। कहते हैं कि युद्ध के लिये भारी तईयारियां हो रही हैं। दूर के ढोल सुहावने। जी हां, लिख लिया। इत्यादि। इन वाक्यों में क्रम से—मैं तुम, मैंने, लोग, होते हैं, मैंने पत्र, यह शब्द छोड़ दिये गये हैं॥

विराम चिन्ह

४८६. विराम (Stop or Pause)--किसी वाक्य को बोलते समय उसके मध्य या अन्त में कुछ रुकने, ठहरने या विश्राम लेने को "विराम" कहते हैं (पद्य. नं० ६)।

४८७. विराम नियम (Punctuation)--जिन नियमों द्वारा किसी वाक्य में उसका यथार्थ अर्थ अवधारण करने के लिये यथा-आवश्यक विश्रामसूचक चिह्न लगाये जाते हैं उन्हें "विरामनियम" कहते हैं।

४८८ विराम चिह्न (Punctuation Marks or Pause Marks)--विश्रामसूचक चिह्नों को "विरामचिह्न" कहते हैं।

४८९. अल्प विराम (, Comma कॉमा)--इस का प्रयोग प्रायः उन वाक्यों में होता है जिन में एक ही प्रकार के कई शब्दों, पदों, वाक्यांशों या उपवाक्यों का प्रयोग एक ही अवस्था में हो।

४९०. अर्द्धविराम (; Semi-colon सेमिकोलन)--इसका प्रयोग प्रायः स्वतंत्र अवयवों को अलग करने के लिये किया जाता है।

४९१. कोलन (: Colon)--जिस संयुक्त वाक्य में उसके उपवाक्यों को मिलाने के लिये कोई समुच्चयबोधक अव्यय न हो वरन् "अर्थात्" शब्द द्वारा अगला उपवाक्य अपने पूर्व के उपवाक्य के अर्थ को स्पष्ट करता हो तो पूर्व के उपवाक्य के अन्त में प्रायः यह चिह्न लगा दिया जाता है।

४९२. आदेशक या अभिघातक चिह्न(-- Dash डैश)--यह चिन्ह प्रायः वहां लगाया जाता है जहां किसी कारण से वाक्य में बोलते बोलते कुछ रुक जाने का संकेत हो या किसी शब्द आदि की व्याख्या उसके आगे लिखी जाय।

जो शब्द ब्रैकट चिह्न में रखने हों उनके दोनों छोरों पर भी ब्रैकटके स्थान में कभी कभी डैश ही लगा दिये जाते हैं।

४९३. विवरण सूचक चिह्न (.-- Point and a Dash प्वाइन्ट और डैश)-- यह चिह्न प्रायः किसी शब्द की व्याख्या आदि लिखने में शब्द के आगे लगाया जाता है।

४९४. निम्नोल्लिखित विवरण सूचक चिह्न (:-- Colon and a Dash कोलन और डैश)--जब किसी वाक्य से सम्बंध रखने वाली कोई बात प्रायः 'निम्नलिखित' या 'निम्नोक्त' शब्दों के संकेत द्वारा आगे की पंक्ति या पंक्तियों में लिखी जाती है अथवा किसी वस्तु के भेद आदि उसी पंक्ति में बिना "निम्नोक्त" या "निम्नलिखित" शब्द लिखे लिख दिये जाते हैं तो वहां पूर्व वाक्य के अन्त में इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

४९५. प्रश्न सूचक चिह्न (? Note of Interrogation नोट ऑफ इनटेरोगेशन)-- सर्व प्रकार के प्रश्नसूचक वाक्यों के आगे पूर्ण विराम के स्थान में यह चिह्न लगाया जाता है। आज्ञार्थक वाक्यों के आगे कुछ पूछने का आशय होने पर भी यह चिह्न नहीं लगाया जाता। जैसे--भारतवर्ष की प्रसिद्ध नदियों के नाम बताओ। यदि किसी मिश्रित वाक्य में मुख्य उपवाक्य आज्ञार्थक उपवाक्य हो और आश्रित उपवाक्य प्रश्नसूचक हो तो ऐसे वाक्यों के आगे यद्यपि अँग्रेज़ी में प्रश्नसूचक चिह्न नहीं लगाया जाता तथापि हिन्दी भाषा में लगाया जाता है। जैसे--बताओ भारतवर्ष में प्रसिद्ध नदियाँ कौन कौनसी हैं?

४९६. विस्मयादिबोधक चिह्न (! Note of Interjection, or Note of Exclamation or Note of Admiration)--यह चिह्न विस्मयादिबोधक अव्यय या विस्मयादि वाक्यों के आगे और कभी कभी दोनों के आगे भी लगाया जाता है। अधिक विस्मयादि सूचित करने के लिये इस चिह्न को कभी कभी दुहरा कर या तिहुराकर भी बना देते हैं, अथवा दो या तीन विस्मयादिसूचक शब्द या वाक्य लिखकर प्रथम के आगे एक, द्वितीय के आगे दो और तृतीय के आगे ऐसे चिह्न बना दिये जाते हैं। वाक्य के अन्त में जहां यह चिह्न लगाया जाता वहां फिर पूर्ण विराम चिह्न नहीं लगाया जाता।

४९७. पूर्ण विराम (। Full Stop or Period)—यह चिह्न प्रत्येक वाक्य के अन्त में लगाया जाता है। पद्यरचना में यह चिह्न प्रत्येक छन्द के विषम पादों के अन्त में लगाया जाता है।

४९८. सम्पूर्ण विराम (॥ Full Stop)--जब कई वाक्यों द्वारा वर्णन की हुई कोई एक बात पूर्ण हो जाती है और उससे सम्बन्धित या असम्बन्धित कोई दूसरी बात लिखी जाती है तो पहली बात पूर्ण होने पर अन्त में बहुधा यह चिह्न लगाया जाता है और दूसरी बात को प्रायः नई पंक्ति से प्रारम्भ करते हैं। पद्यरचना में यह चिह्न प्रत्येक छन्द के समपादों के अन्त में लगाया जाता है। पद्य में जहां एक से अधिक छन्दों का उल्लेख होता है वहां छन्दों की संख्या दिखाने के लिये प्रत्येक छन्द के अन्त में इस चिह्न के आगे प्रायः संख्यासूचक अङ्क लिखकर अङ्क के आगे भी यही चिह्न दुहरा दिया जाता है।

अन्य चिन्ह

नोट--विराम चिह्नों के अतिरिक्त आजकल की लिखित हिन्दी भाषा में निम्नलिखित चिह्न भी किसी विशेष संकेतार्थ प्रयुक्त होते हैं:--

४९९. योजक चिह्न (- Hyphen Mark हाइफन मार्क)--यह अभिधानक चिह्न [नं०४९२] से लगभग आधा लम्बा चिह्न होता है। जिन शब्दों या शब्दांशों के बीच में यह चिह्न लगाया जाता है उनकी अभिन्नता [संयुक्ति] का सूचक है। पंक्ति के अन्त में स्थानाभाव से जब किसी शब्द को दो भागों में तोड़ना पड़ता है तो उस पंक्ति के अन्त में शब्द के पूर्व भाग के आगे यह चिह्न लगादिया जाता है और शब्द का शेष भाग अगली पंक्तिमें लिख दिया जाता है। सामासिक शब्दों के अवयवों के मध्य में भी इसका बहुधा प्रयोग होता है॥

५००. कोष्टक चिह्न (( ), [ ], { } Brackets, or Parenthesis ब्रैकट या पैरेनथेसिस)—जिन अङ्कों, शब्दों, या वाक्यांशों आदि का वाक्य के साथ वाक्यरचनापेक्षा कोई सम्बन्ध नहीं होता किन्तु अर्थ स्पष्ट करने आदि के लिये उन्हें लिखना उपयोगी होता है तो उन्हें प्रायः इन तीन प्रकार के चिन्हों में से किसी एक के मध्य रखदेते हैं। अङ्क प्रायः पहिले या दूसरे प्रकार के कोष्टकों ही में, और दो या अधिक पंक्तियों के उपवाक्यादि को दूसरे या तीसरे प्रकार के ही कोष्टकों में रखते हैं। जब एक कोष्ट के अन्तर्गत दूसरे कोष्ट को भी रखने की आवश्यकता हो तो दूसरे या तीसरे कोष्ट के अन्तर्गत पहला कोष्ट रक्खा जाता है॥

५०१. अवतरण चिह्न (‘ ’, “ ” Inverted Commas, Quotation Points, or Guillemets)—यह चिह्न इकहरे और दुहरे दो प्रकार के होते हैं। वाक्य में जब लेखक किसी अन्य व्यक्ति के वचन वा वाक्य आदि को दुहराता है तो उस वचन आदि को, तथा जिन अक्षरों, शब्दों या वाक्यों आदि की ओर पाठकों का ध्यान किसी कारण विशेष से उसे अधिक आकर्षित करना हो तो उन अक्षरों आदि को इन दोनों प्रकार के चिन्हों में से किसी एक के मध्य में रख दिया जाता है। जब किसी अन्य व्यक्ति के वाक्य के अन्तर्गत कोई ऐसा शब्द या वाक्यांश आदि आजाय जिसे इसी चिन्ह के मध्य रखने की आवश्यकता जान पड़े तो उस शब्द या वाक्यांश आदि को इकहरे चिन्ह के मध्य में और पूर्ण वाक्य को दुहरे चिन्ह के मध्य में रख दिया जाता है। अथवा उस शब्द या वाक्यांश को कुछ मोटे अक्षरों में लिख दिया जाता है या उनके नीचे एक तलरेखा खींच दी जाती है॥

५०२. तलरेखा (———Underline)—वाक्य के किसी मुख्य शब्द या वाक्यांश के नीचे

जो एक लम्बी सरल रेखा लगादी जाती है उसे "तलरेख" कहते हे। यह रेखा कभी २ अवतरण चिन्ह का भी काम देती है ॥

५०३. तद्वेच या तथैव चिन्ह („ Ditto Mark)—जब किसी एक पंक्ति के एक या अधिक शब्दों को नीचे की एक या अधिक पंक्तियों में उन शब्द या शब्दों के नीचे बार बार लिखने की आवश्यकता होती है तो उन्हें बारबार न लिखकर उनके ठीक नीचे यह चिन्ह लगादिया जाता है ॥

५०४ प्रभृति सूचक चिह्न (—, ··· ··· ···, ····, × × ×, + + +, * * *, ∴ ∴ ∴ Ellipses, or Elliptical Marks)—यह चिह्न प्रायः ७ प्रकार के होतेहैं जिनमें से कोई एक प्रकार का चिह्न वहां प्रयुक्त होता है जहां लिखते लिखते किसी कारण विशेष से कुछ शब्द या पद या अङ्क छोड़ दिये जाते हे। जहां किसी वाक्य या गणना के केवल आदि और अन्त के शब्द या अङ्क लिखकर मध्य के शब्द या अङ्क छोड़े जाते हैं वहां प्रायः पहले तीन प्रकार के चिह्नों में से किसी एक का प्रयोग होता है। और जहां अन्त भाग छोड़ा जाता है वहां सातों ही में से कोई एक चिह्न लगाया जाता है ॥

५०५. अपूर्णता सूचक या संक्षिप्तरूपसूचक चिह्न (o, · Abbreviation Mark)—जहां संक्षिप्तता के लिये किसी शब्द का केवल प्रथम अक्षर (मात्रा सहित) या किसी बड़े शब्द के दो या तीन अक्षर अर्थात् अपूर्ण शब्द लिखा जाता है वहां अपूर्ण शब्द के आगे हिन्दी में प्रायः पहिला चिह्न रख दिया जाता है। दूसरा चिह्न यद्यपि अंग्रेज़ी में अपूर्ण शब्दों के आगे सर्वत्र लगाया जाता है तथापि आज कल हिन्दी में भी इसका प्रयोग होने लगा है ॥

५०६. इत्यादि सूचक चिह्न (&c Et cætera = and the rest)—यह चिह्न अँग्रेज़ी भाषा में तो प्रयुक्त होता ही है, पर अब "इत्यादि" के स्थान में संक्षिप्तता के लिये हिन्दी में भी प्रयोग में लाया जाने लगा है ॥

५०७. त्रुटिपूरक चिह्न या हंसपद (^, X, × Caret Mark)—यह तीन प्रकार के चिह्न हैं। केवल हस्त लिखित लेखों में या प्रूफ संशोधन में यह प्रयुक्त होते हैं। जहां लिखने में भूलसे कोई अक्षर या शब्द या वाक्यांश आदि बीच में छूट जाता है तो वहां इन तीनों में से कोई एक चिह्न (पहिला चिह्न पंक्ति के तल भाग में, दूसरा तले ऊपर दोनों जगह और तीसरा ऊपर की ओर) लगाकर छूटे हुए शब्दादि को उसी स्थान में पंक्ति के ऊपर लिख देते हैं, या उसी आकार का "त्रुटिपूरकचिन्ह" देकर हाशिये पर (पृष्ठ के छोर पर) लिखदेते हैं। पहिला चिन्ह प्रायः छूटे हुए शब्दको पंक्ति के ऊपर ही लिखने में,और तीसरा हाशिये पर ही लिखने में प्रयुक्त होता है ॥

५०८. लुप्तताबोधक चिन्ह (' Apostrophe Mark)—यद्यपि यह चिन्ह प्रायः अँग्रेज़ी भाषा ही में जहां किसी शब्दके आदि मध्य या अन्त अक्षरका लोप हुआ हो प्रयुक्त होता है तथापि आज कल तारीख़ या मिती के लिखने में जहां संक्षिप्तता के लिये सन् या सम्वत् में सैकड़े और सहस्र के अंकों को लुप्त कर दिया जाता है वहां अंग्रेज़ी के समान हिन्दी में भी इसका प्रयोग होने लगा है ॥

५०६. टिप्पणी सूचक चिन्ह (Foot note Marks)–यह चिन्ह निम्नलिखित कईप्रकारके हैं:–

१. ऐस्टेरिस्क मार्क (* Asterisk or Little star Mark)
२. ओबेलिस्क मार्क († Obelisk or Dagger Mark)
३. डब्ल डैगर मार्क (‡ Double Dagger Mark)
४. पैरेलेल्ज़ मार्क (‖ Parallels Mark)
५. सेक्शन मार्क (§ Section Mark)
६. पैराग्राफ़ मार्क (¶ Paragraph Mark)

लेख के किसी शब्द के संबन्ध में जब कोई विशेष सूचना लेखक को देनी होती है तो उस शब्द आदि के आगे इन चिन्हों में से कोई एक चिन्ह लगा कर पृष्ठ के तल भाग में मुख्य लेख के नीचे एक सरल पंक्ति देकर और वही चिन्ह लगा कर उसके आगे वह सूचना लिखदी जाती है। एक ही पृष्ठ में जब कई शब्द आदि के सम्बन्ध में कई सूचनाएँ देनी होती हैं तो पहली सूचना के लिये पहिला चिन्ह, दूसरी के लिये दूसरा, तीसरी के लिये तीसरा, इत्यादि क्रम से चिन्ह लगाये जाते हैं। इन ६ चिन्हों के अतिरिक्त +, ×, इत्यादि अन्य कई प्रकार के चिन्ह भी कभी कभी इसी काम के लिये उपयोग में लाये जाते हैं। कभी कभी इनके स्थान में अङ्कों या व्र कटयुक्त अक्षरों से भी यही काम निकाला जाता है॥

नं० ५ का सैक्शन मार्क (§ Section Mark) अँग्रेज़ी में मुख्यतः किसी ग्रन्थ के अध्याय विशेष की किसी धारा विशेष के संकेतार्थ प्रयुक्त होता है जिसके आगे उस धारा की संख्या का अंक भी लिख दिया जाता है॥

५१०. हस्तचिह्न(☞ Index, or Hand Mark)—यह चिह्न प्रायः उस वाक्य आदिके पास लगाया जाता है जिसकी ओर पाठकों का चित्त अधिक आकर्षित करना अभीष्ट होता है॥

५११. सूचनात्मक टिप्पणी चिह्न (⁂ Asterismus, or Star Marking)—यह चिन्ह विना संकेत की किसी अधिक बड़ी सूचना देने के लिये उसके पूर्व लगाया जाता है॥

५१२. अर्द्ध चन्द्र चिह्न (⌣ Breve ब्रीव)—यह अर्द्ध चन्द्राकार चिह्न किसी अँग्रेज़ी स्वर वर्ण के ऊपर उसका दीर्घ उच्चारण प्रकट करने के लिये लगाया जाता है। और हिन्दी में किसी अँग्रेज़ी शब्द के स्वरवर्ण का कुछ विशेष उच्चारण प्रकट करने के लिये उस स्वर के ऊपर लगाया जाता है। (नं० १५५)॥

५१३. आघात सूचक चिह्न (´ Accent Mark)—यह छोटी तिरछी लकीर उर्दू के ज़बर जैसा चिन्ह किसी अँग्रेज़ी स्वर या शब्दांश के ऊपर वहां लगाया जाता है जहां उस स्वर या शब्दांश पर कुछ बल या आघात डालना अभीष्ट हो। रौमन लेखमें, अर्थात् हिन्दी उर्दू आदि भाषा को अङ्गरेज़ी अक्षरों में लिखते समय जहां a, i, u. इन तीन अक्षरों का प्रयोग क्रम से दीर्घ आ, ई, ऊ के लिये किया जाता है तो वहाँ इन अङ्गरेज़ी अक्षरों पर भी प्रायः यही चिह्न लगा दिया जाता है॥

५१४. मैकरन (¯ Macron)—यह योजक (हाइफ़न) जैसा चिह्न किसी अङ्गरेज़ी स्वरवर्ण के ऊपर उसका ह्रस्व उच्चारण प्रकट करने के लिये प्रयुक्त होता है।

५१५. डाइइरेसिस (¨ Diæresis)—यह द्विनिकटबिन्दु चिह्न भी केवल अङ्गरेज़ी में उन पास पास आने वाले दो स्वरवर्णों के ऊपर लगाया जाता है जिनका उच्चारण अलग अलग करना अभीष्ट हो। यह चिन्ह अँग्रेज़ी कोषों आदि में किसी स्वरवर्ण के कहीं ऊपर और कहीं नीचे भी उसके उच्चारण विशेष के लिये लाया जाता है॥

२. पद्य रचना

(PROSODY)

नोट--व्याकरण का यह विभाग व्याकरण शास्त्र से गौण और छन्द शास्त्र से मुख्य सम्बन्ध रखता है, अतः इसके थोड़े से आवश्यक पारिभाषिक शब्दों की परिभाषा यहां बहुत संक्षिप्तरूप से दी जायगी ॥

१. छन्दोनिरूपण (Prosody, or Poetical Treatment) व्याकरण का वह विभाग है जिसमें छन्द बनाने के नियम दिये जाते हैं। इसी को 'पद्यात्मक रचना' भी कहते हैं ॥

२. छन्दःशास्त्र (A book of Metre, or A Poetical Treatise)--छन्दरचना के नियम जिस ग्रन्थ में निरूपण किये जाते हैं, उसे छन्दशास्त्र कहते हैं ॥

३. पिङ्गल (Pingal)--छन्दशास्त्र के रचयिता एक प्राचीन प्रसिद्ध आचार्य का और उनके रचे छन्दोग्रन्थ का, जो इस विषय के अन्य अनेक ग्रन्थों का मूलाधार माना जाता है, नाम है ॥

४. छन्द (A Stanza, or a Metre)—पद्यात्मक रचना का प्रत्येक अङ्ग (जिनका समूह ही 'पद्यात्मक रचना' है) "छन्द" कहलाता है जो गति, यति और तुकबन्दी आदि के नियमों का और दग्धाक्षर आदि दोषों के बचाव का विचार रख कर मात्राओं या वर्णों की गणना से रचा जाता है।

५. गति) (Rhythm)—प्रत्येक प्रकार के छन्द पढ़ने की रीतिविशेष या पाठ प्रवाह या
६. लय) ध्वनि को 'गति' या 'लय' कहते हैं ॥

७. यति) (A pause, or a cæsura)-छन्द के प्रत्येक पाद में एक या अधिक स्थानों
८ विरति) पर जो पढ़ते समय प्रायः कुछ रुकना पड़ता है उसे "यति" या "विरति" कहते हैं ॥

९. विराम--यति या विरति ही को "विराम" भी कहते हैं। (व्या० नं० ४८६) ॥

१०. विश्राम—विराम ही को "विश्राम" भी कहते हैं ॥

११. यतिस्थल) (Position of a pause)--छन्द के प्रत्येक पाद में जिस स्थान पर
१२. यतिस्थान) 'यति' होती है उसे 'यतिस्थल' या 'यतिस्थान' कहते हैं ॥

१३. तुक) (Rhyme)—प्रत्येक छन्द के पादान्त में छन्द को वर्णप्रिय बनाने के
१४. तुकबन्दी) लिये जो नियमानुकूल स्वरयुक्त कुछ अक्षरों की समानता होती है, उसे 'तुक' या 'तुकबन्दी' कहते हैं ॥

१५. अन्त्यानुप्रास--तुक ही को "अन्त्यानुप्रास" भी कहते हैं ॥

१६. पद) (A Foot, a poetical line, or a Quarter of a Stanza)—प्रत्येक
१७. पाद) छन्द के प्रायः ४ (किसी किसी के ६ या ८) भाग होते हैं। इन भागों में से प्रत्येक भाग को 'पद' या 'पाद' अथवा 'चरण' कहते हैं. (व्या० नं० ४२९.) ॥

१८ चरण—पद या पाद ही को "चरण" भी कहते हैं ॥

१९. समपाद (Even Quarter)—प्रत्येक छन्द के दूसरे और चौथे (व छटे और आठवें) पादों को 'समपाद' कहते हैं ॥

२०. विषम पाद (Odd Quarter)--प्रत्येक छन्द के पहिले और तीसरे (व पाँचवें और सातवें) पाद को 'विषम पाद' कहते हैं ॥

२१. दग्धाक्षर (Inauspicious Letters)--जो अक्षर किसी छन्द के प्रारम्भ में रखने से दूषित माने जाते हैं उन्हें "दग्धाक्षर" कहते हैं ॥

२२. पूर्ण दग्धाक्षर (Fully inauspicious Letters)—झ भ र ष ह, यह ५ अक्षर जिन का किसी छन्द के प्रारम्भ में रखना अधिक दूषित माना जाता है 'पूर्ण दग्धाक्षर' कहलाते हैं॥

२३. अर्द्धदग्धाक्षर (Semi-inauspicious Letters)—ङ ञ ट ठ ड ढ ण थ प फ ब म ल व, यह १४ अक्षर जिनका किसी छन्द के प्रारम्भ में रखना कम दूषित माना जाता है 'अर्द्धदग्धाक्षर' कहलाते हैं ॥

नोट १--किसी किसी की सम्मति में अर्द्ध दग्धाक्षरों में 'ड' के स्थान में 'त' है।

नोट २--दग्धाक्षर यदि गुरु (दीर्घ) हों या किसी देव देवी के नाम में या मांगलिक शब्द में अथवा किसी देव स्तुति या लोकहितसूचक छन्द की आदि में आ जावें तो निर्दोष हैं ॥

२४. छन्द परिमाण (Stanzaic quantity)--मात्राओं या वर्णों अथवा गणों की जिस गणना पर छन्द रचना की जाती है उसे 'छन्द परिमाण' कहते हैं ॥

२५. मात्रा (A Syllabic Instant)--एक ह्रस्व वर्ण के उच्चारण में जितना काल लगता है उसे 'मात्रा' कहते हैं। (व्या नं० ८३)

२६, २७. कल या कला—मात्रा ही को 'कल' या 'कला' भी कहते हैं ॥

२८. लघुवर्ण (A Short Syllable)—जिस वर्ण में एक मात्रा हो, अर्थात् जिसके उच्चारण में एक मात्रा काल लगे उसे 'लघुवर्ण' कहते हैं। छन्द रचना में लघुवर्ण का चिन्ह "।" है और संकेत 'ल' है। सर्व ह्रस्व स्वर (अ, इ, उ, ऋ), सर्व ह्रस्व स्वरान्त व्यंजन (क, कि, कु, कृ, इत्यादि) और अर्द्धचन्द्रबिन्दु वाले वर्ण लघुवर्ण हैं। किसी छन्द के पढ़ने में जिस दीर्घ वर्ण के उच्चारण में एक मात्रा काल ही लगे अर्थात् जो लघुवर्ण के समान पढ़ा जाय तो वह भी लघुवर्ण ही माना जाता है ॥

२९. गुरुवर्ण (A Long Syllable)—जिस वर्ण में दो मात्रा हों, अर्थात् जिसके उच्चारण में दो मात्रा काल लगे उसे 'गुरु वर्ण' कहते हैं। छन्दरचना में गुरुवर्ण का चिन्ह "ऽ" है और संकेत 'ग' है। सर्व दीर्घस्वर (आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः), सर्व दीर्घ स्वरान्त व्यंजन (का, की, कू, इत्यादि), तथा अनुस्वार या विसर्गयुक्त ह्रस्व स्वरान्त व्यंजन (कं, किं, कुं, कः, किः, कुः, इत्यादि), पाद के अन्त के वे लघुवर्ण जो आघात देकर दीर्घ की समान पढ़े जायँ, और संयुक्त व्यंजनों से पूर्व आने वाला वह लघुवर्ण जो आघात देकर कुछ कुछ दीर्घ ही की भांति उच्चारण किया जाय (जैसे सत्य शब्द का स), ये सर्व 'गुरुवर्ण' हैं।

नोट १--तुम्हारी, कन्हैया, उन्हें, इत्यादि शब्दों के संयुक्त व्यंजनों के पूर्व के लघुवर्ण पर आघात न होने से उसे लघु ही माना जाता है।

नोट २--ऌ ॡ, इन दो वर्णों का प्रयोग हिन्दी कविता में नहीं किया जाता।

३०. गण (A Feet)--छन्द की गति और छन्द परिमाण ठीक रखने के लिये जिनके आधार पर छन्द रचना की जाती है उन्हें 'गण' कहते हैं।

३१. मात्रिक गण (Matric Feet)--जिन गणों के आधार पर मात्रिक छन्दों (न. ५८-६४) की रचना की जाती है उन्हें 'मात्रिक गण' कहते हैं जो निम्नलिखित ५ हैं:--

१. टगण--६ मात्राओं का SSS
२. ठगण--५ मात्राओं का SSI
३. डगण--४ मात्राओं का SS
४. ढगण--३ मात्राओं का SI
५. णगण--२ मात्राओं का S

३२. वर्णिक गण
३३. त्रिवर्णिक गण } (Varnic Feet or Trivarnic Feet)--तीन तीन वर्णों वाले जिन गणोंके आधार पर वर्णिक छन्दों (न. ६५-७२) की रचना की जाती है उन्हें 'वर्णिक गण' या 'त्रिवर्णिकगण' कहते हैं जो निम्नलिखित ८ हैं:-

३४. (१) मगण (Molossus)--जिसके तीनों वर्ण गुरु हों SSS, ६ मात्रा, जैसे--बीहारी।

३५. (२) यगण (Bacchius)--जिसका पहिला एक वर्ण लघु और शेष दो वर्ण दीर्घ हों ISS, ५ मात्रा, जैसे-बिहारी।

३६. (३) रगण (Amphimacer)--जिसका पहिला और तीसरा वर्ण दीर्घ और दूसरा वर्ण लघु हो SIS, ५ मात्रा, जैसे-बीहारी।

३७. (४) तगण (Anti Bacchius)--जिसके पहिले दो वर्ण गुरु और तीसरा वर्ण लघु हो SSI, ५ मात्रा, जैसे-बीहार।

३८. (५) सगण (Anapæstus)--जिसका पहिला और दूसरा वर्ण लघु और तीसरा वर्ण दीर्घ हो IIS, ४ मात्रा, जैसे-बिहरी।

३९. (६) जगण (Amphibrachys)--जिसका पहिला और तीसरा वर्ण लघु और दूसरा वर्ण दीर्घ हो ISI, ४ मात्रा, जैसे-बिहार।

४०. (७) भगण (Dactylus)--जिसका पहिला वर्ण दीर्घ और शेष दो वर्ण लघु हों SII, ४ मात्रा, जैसे--बीहर।

४१. (८) नगण (Tribrachys)--जिसके तीनों वर्ण लघु हों III, ३ मात्रा, जैसे-बिहर।

नोट--आज कल मात्रिकगण की कोई आवश्यक्ता न समझ कर प्रायः वर्णिक गणों ही से सब काम निकाल लिया जाता है।

४२. अशुभ गण (Inauspicious Metres)--जो गण किसी मात्रिक छन्द के आदि में रखने से अशुभ माने जाते हैं उन्हें 'अशुभगण' कहते हैं। वे तगण, रगण, सगण, जगण, यह चार हैं। (शेष ४ गण शुभ हैं)॥

नोट- छन्द का पहिला एक शब्द जब तीन वर्णों से हीनाधिक वर्णों का हो तो वहां गण दोष नहीं माना जाता और बहुमत से वर्णिक छन्दों में कहीं भी गण दोष नहीं माना जाता।

(१) शुभतम गण (परम मित्र)..... मगण
(२) शुभतर गण (मित्र)..... नगण
(३) शुभ गण (अनुचर)..... यगण
(४) अल्प शुभ गण (दास)..... भगण
(५) अल्प अशुभगण. (उदासीन)..... तगण
(६) अशुभ गण (अति उदासीन)... जगण
(७) अशुभतर गण (शत्रु)..... रगण
(८) अतिअशुभ गण (परम शत्रु)..... सगण

४३. अशुभगणदोषमोचन (Removal of unluckiness of Inauspicious Metres) अशुभगण प्रयोग का दोष मिट जाने को 'अशुभगण-दोषमोचन' या 'अशुभ गण दोष अपहरण' कहते हैं जो निम्नलिखित दो विधि से किया जा सकता है:--

(१) छन्द का पहिला शब्द अशुभगणपूरित न रक्खा जाय, अर्थात् तीन अक्षरों से हीनाधिक का रक्खा जाय।

(२) छन्द का पहिला शब्द यदि अशुभगणपूरित (तीन अक्षरों का) ही आ पड़े तो उस छन्द का दूसरा गण शुभतम या शुभतर (अति अशुभ के आगे शुभतम, अशुभतर के आगे शुभतम या शुभतर, अशुभ या अल्प अशुभ के आगे कोई शुभगण) रख दिया जाय॥

४४. द्विवर्णिक गण (Dissyllabic Feet)--दो दो वर्ण वाले गणोंको 'द्विवर्णिक गण' कहते हैं जो गिन्ती में निम्नलिखित ४ हैं:--

४५. (१) गग (Spondaic)--जिसके दोनों वर्ण गुरु हों (ऽऽ. ४ मात्रा), जैसे-रामा

४६. (२) लग (Iambic)--जिसका पहिला वर्ण लघु और दूसरा गुरु हो (।ऽ. तीन मात्रा), जैसे—रमा

४७. (३) गल (Trochaic)—जिसका पहिला वर्ण गुरु और दूसरा लघु हो (ऽ।. तीन मात्रा), जैसे-राम

४८. (४) लल (Pyrrhic)--जिसके दोनों वर्ण लघु हों (।।.२ मात्रा), जैसे--रम

नोट--कुछ वर्णिक छन्दों के पदान्त में त्रिवर्णिक गणों के अतिरिक्त द्विवर्णिक गण अथवा केवल एक लघु या गुरु वर्ण भी जोड़ना पड़ता है॥

४९. आर्य्यागण
५०. गाथागण
} (Arya Gana)—गाथा या आर्य्या छन्दों की रचना जिन चौमात्रिक गणों के आधार पर की जाती है उन्हें 'आर्य्यागण' या 'गाथागण' कहते हैं। ये निम्नलिखित ५ हैं:—

(१) गग	ऽऽ	४ मात्रा।
(२) ललग	।।ऽ	४ मात्रा (सगण)।
(३) लगल	।ऽ।	४ मात्रा (जगण)।
(४) गलल	ऽ।।	४ मात्रा (भगण)।
(५) लललल	।।।।	४ मात्रा॥

५१. दशाक्षरीविद्या
५२. दशवर्णात्मकविद्या
} आठों गणों के और गुरु लघु के १० संकेताक्षरों (म त य र भ स ज न ग ल) को 'दशाक्षरीविद्या' या 'दशवर्णात्मकविद्या' कहते हैं।

५३. गणसूत्र—जिस सूत्र की सहायता से वर्णिक गणों के नाम और उनमें से प्रत्येक का अलग अलग लक्षण और रूप बड़ी सुगमता से जान लिया जाता है वह 'गणसूत्र' है। वह यह है:--"यमाताराजभानसगलं"॥

इस सूत्र के पहिले ८ अक्षरों से गणों के नाम जान लिये जाते हैं। और जिस गण का लक्षण और रूप जानना हो सूत्र में से उस गण के नाम का पहिला अक्षर और उसी के आगे के दो अक्षर ले लें। यही तीनों अक्षर गण का रूप हैं। इस रूप से लक्षण भी जान लिया जायगा। जैसे—तगण का रूप और लक्षण जानना अभीष्ट है तो सूत्र में से 'ताराज' रूप प्राप्त हुआ। इस रूप में पहिले दो वर्ण गुरु हैं और तीसरा वर्ण लघु है। अतः तगण वह गण है जिस में पहिले दो वर्ण गुरु हों और तीसरा वर्ण लघु हो। यही 'तगण' का लक्षण है॥

५४. अष्टछन्दस्सूत्र—धीश्रीस्त्रीम्, वरासाय, कागुहार, वसुधासः, सतेकृत्, कदासज, किवदम, नहसन। 'गणसूत्र' की समान इन अष्ट सूत्रों से भी आठों गणों के नाम और उनके रूप व लक्षणादि का बोध होता है।

५५. दल—दो पंक्तियों में लिखे जाने वाले दोहा और सोरठा आदि छन्दों की प्रत्येक पंक्ति को 'दल' कहते हैं॥

५६. अद्धाली—चौपाई छन्दों के (या चार पंक्तियों में लिखे जाने वाले छन्दों के) पहिले दो पादों और पिछले दो पादों में से प्रत्येक को 'अद्धाली' कहते हैं॥

५७ यतिभंग—छन्द के किसी पाद में 'यतिस्थान' का शब्द भंग हो जाय अर्थात् शब्द का कुछ अंश यतिस्थान के पूर्व और शेष भाग यतिस्थान के आगे बोला जाय तो इसे 'यतिभंग' दोष कहते हैं॥

५८. मात्रिकछन्द }
५९. जातिछन्द }
जिन छन्दों में मात्राओं की गिन्ती के अनुसार (अक्षरों की गिन्ती पर ध्यान न देकर) पाद रचना की जाती है उन्हें मात्रिकछंद' या 'जातिछंद कहते हैं (नं० ६०—६४)॥

६०. (१) सममात्रिकछन्द—जिन मात्रिक छन्दों के चारों पाद गिन्ती में समान मात्रा वाले एक से हों। (नं० ८१)॥

६१. (२) अर्द्धसममात्रिकछन्द—जिन मात्रिक छन्दों के दोनों समपाद समान मात्रा के हों और दोनों विषम पाद भी समान मात्राओं के हों। (नं० ८३)॥

६२. (३) विषममात्रिकछन्द—जिन मात्रिक छन्दों के चारों पाद, या दोनों सम और दोनों विषमपाद समान मात्राओं के न हों, अर्थात् जिन मात्रिक छन्दों के पाद सम या अर्द्धसममात्रिक छन्दों में से किसी के अनुकूल न हों। (चार पादों से अधिक पाद के छन्द भी विषममात्रिकछन्दों की कोटि ही में गिने जाते हैं)। (नं० ८४, ८५)॥

६३ (४) साधारण सममात्रिकछन्द—जिन सममात्रिकछन्दों के प्रत्येक पाद में अधिक से अधिक ३२ मात्रायें हों। (नं० ६०, ८१)॥

६४. (५) दंडक सममात्रिकछन्द—जिन मात्रिकछन्दों के पाद में ३२ से अधिक प्रत्येक मात्रायें हों। (नं० ८२)॥

६५. वर्णिक छन्द }
६६. वर्णवृत्त }
जिन छन्दों की पाद रचना मगण आदि गणों और उन के वर्णों की गणना और क्रम के अनुसार की जाती है उन्हें 'वर्णवृत्त' या 'वर्णिक छन्द' कहते हैं। (नं० ६७–७२)॥

६७. (१) सम वर्णवृत्त—जिन वर्णवृत्तों के चारों चरण गिन्ती में समान गणों के अनुसार क्रमबद्ध हों। (नं० ६०—९५)॥

६८. (२) अर्द्धसम वर्णवृत्त—जिन वर्णवृत्तों के समपाद परस्पर और विषम पाद परस्पर गिन्ती में समान गणों के अनुसार क्रमबद्ध हों। (नं. ९६, ९७)॥

६९. (३) विषम वर्णवृत्त—जिन वर्णवृत्तों में सम या अर्द्धसम में से किसी वृत्त का लक्षण न मिले। (नं० ९८–१०१)॥

७०. (४) साधारण वर्णवृत्त—जिन वर्णवृत्तों के प्रत्येक पाद में अधिक से अधिक २६ वर्ण हों। (नं. ९०, ९१, ९६, ९८, ९९, १०१) ॥

७१. (५) दंडक वर्णवृत्त—जिन वर्णवृत्तों के प्रत्येक पाद में २६ से अधिक वर्ण हों। (नं. ९२, ९३, ९४, ९५, ९७, १००) ॥

७२. (६) मुक्तक या मुक्तदण्डक वर्णवृत्त—जिन दण्डक वर्णवृत्तों में गणों का बन्धन न हो। प्रत्येक पाद में केवल अक्षरों की संख्या का ही प्रमाण रहे अथवा कहीं कहीं गुरु लघु का भी नियम हो। (नं० ९५, ९७, १००) ॥

७३. साधारण वर्णवृत्त—जिन वर्णवृत्तों के एक या अधिक पादों के अन्त में गणों के अतिरिक्त कोई एक या दो लघु या गुरु या दोनों वर्ण भी हों। (नं० ९०, ९३, ९६, ९८, ९९, १०१) ॥

७४. गणबद्ध वर्णवृत्त—जो वर्णवृत्त केवल गणबद्ध ही हों: अर्थात् जिनके किसी भी पाद में गणों के अतिरिक्त अन्य कोई लघु या गुरु वर्ण न हो। (नं० ९२) ॥

७५. गण वर्णवृत्त—जिन गणबद्ध छन्दों के प्रत्येक पाद में सब समान (एक ही प्रकार के) गण हों। (नं० ९१) ॥

७६. मुक्तक वर्णवृत्त—जो वर्णवृत्त गणों के बन्धन से मुक्त हों, अर्थात् केवल लघु गुरु वर्णों की गणना से ही रचे गये हों। (नं० ९५, ९७, १००) ॥

७७. गाथा छन्द—जिन छन्दों की पद-रचना मात्राओं की गिन्ती और आर्य्यागणों की गणना व क्रम के अनुसार की जाती है। (नं० ८६, ८७) ॥

७८. वैतालीय छन्द—जिन छन्दों की पाद रचना मात्राओं की गिन्ती और किसी 'वर्णिक गण' (प्रायः रगण) के आधार पर की जाय और जिन में लघु गुरु वर्णों का प्रयोग कुछ विशेष नियमों के आधीन किया जाय। (नं० ८८, ८९) ॥

७९. तुकान्त छन्द—जिन मात्रिक या वर्णिक छन्दों के चारों पाद में या सम सम और विषम विषम पादों में या समविषम समविषम में अथवा केवल समसम में या विषम-विषम में या पहिले दूसरे चौथे पादों में उत्तम मध्यम या जघन्य किसी प्रकार की तुक हो उन्हें "तुकान्त छन्द" कहते हैं ॥

८०. पुनरुक्तयन्त छन्द—जिन मात्रिक या वर्णिक छन्दों के दो या अधिक पादों में पादान्त के एक या अधिक शब्दों की पुनरुक्ति हो और प्रत्येक पुनरुक्ति के पूर्व तुक भी हो उन्हें 'पुनरुक्तयन्त छन्द' कहते हैं और जिस विशेष नाम के छन्द में इस प्रकार की तुक और पुनरुक्ति हो उसी विशेष नाम से यह छन्द नामाङ्कित होगा ॥

कुछ प्रसिद्ध छन्दों के नाम
और उनका परिमाण

नोट—मात्रिक और वर्णिक छन्दों में से प्रत्येक जाति के छन्द अनेकानेक प्रकार के हैं। जिन में से कुछ अधिक प्रसिद्ध और प्रचलित छन्दों के नाम निम्नोल्लिखित हैं। इनमें से जिन नामों के आगे एक एक अङ्क दिया है वह उस नाम वाले मात्रिक छन्द के एक चरण की मात्राओं की और वर्णिक छन्दों के वर्णों की संख्यासूचक है। जिन नामों के आगे दो दो अङ्क हैं वह उनके प्रत्येक विषम और प्रत्येक सम चरण की मात्राओं की या वर्णों की संख्या बताते हैं। जिन नामों के आगे चार चार अङ्क हैं वह क्रम से प्रथमादि चारों चरणों की मात्राओं की या वर्णों की संख्या बताते हैं और जहां कोष्ठ में अङ्क और वर्ण या केवल वर्ण दिये गये हैं वह उन छन्दों के प्रत्येक चरण या विषम और सम चरणों के अथवा चारों चरणों के गणों के नाम और गणसंख्या तथा लघु गुरु वर्ण और उनकी संख्या बताते हैं।

८१. सममात्रिक छन्द—सुगति ७, छवि ८, गङ्ग ९, निधि ९, दीप १०, अहीर ११, शिव ११,

तोमर १२, लीला १२, उल्लाला १३ या १४, सखी १४, सुलक्षण १४, मनमोहन १४, मनोरम १४, चौबोला १५, चौपई १५, चौपाई १६, पद्धरि १६, अरिल्ल १६, राम १७, चन्द्र १७, शक्ति १८, पुरारि १८, सुमेरु १९, नरहरी १९. हंसगति २०, मधुतिलका २०, अड़िल्ल २१, भानु २१, बिहारी २२, सुखदा २२, उपमान २३, सम्पदा २३, रोला २४, रूपमाला २४, मुक्तामणि २५, सुगातिका २५, गीता २६, गीतिका २६, सरसी २७, शुभगीता २७, हरिगीतिका २८, विधा २८, मरहट्टा २९, मरहट्टा माधवी २९, घनपैया ३०, शोकहर ३०, वीर ३१, त्रिभङ्गी ३२ पद्मावती ३२। इत्यादि॥

८२. दण्डक सममात्रिक छन्द—करखा ३७, झूलना ३७, मदनहर ४०, विजया ४०, हरिप्रिया ४६। इत्यादि॥

८३ अर्द्धसममात्रिक छन्द—बरवे १२, ७, अतिबरवे १२, ९, दोहा १३, ११, सोरठा ११, १३, दोही १५, ११, हरिपद १६, ११, उल्लाल १५, १३, दविरा १६, १४, घत्ता १८, १३, घत्तानन्द ११+७, १३, घत्ता १८, १४, घत्तानन्द १०+८, ८+६, (६४ मात्रा)। इत्यादि॥

८४. विषममात्रिक छन्द—लक्ष्मी ३०+२७, सिंहनी १२, २०, १२, १८, गाहिनी १२, १८, १२, २०, मनोहर १३, १३, १३, २८॥

८५ विषममात्रिक छन्द (षट्पदी)—अमृतध्वनि १४४ (दोहा + २४, २४, २४, २४), कुंडलिया १४४ (दोहा + रोला), छप्पय १४८ या १५२ (रोला + उल्लाला), हुल्लास १६२ (चौपाई + त्रिभङ्गी)॥

८६ अर्द्धसमगाथा छन्द—गीति १२, १८, उपगीति १२, १५, आर्य्यागीति १२, २०॥

८७ विषमगाथा छन्द—आर्य्या १२, १८, १२, १५, उद्गीति १२, १५, १२, १८॥

८८ समवैताली छन्द—अपरान्तिका १६, चारुहासिनी १४॥

८९. अर्द्धसमवैताली छन्द—उदीच्यवृत्ति १४, १६, प्राच्यवृत्ति १४, १६, प्रवर्त्तक १४, १६, आपातलिका १४, १६॥

९० समवर्णवृत्त—श्री १, कामा २, मधु २, मन्दर ३, शशी ३, हरि ४, देवी ४, नायक ४, यमक ५, चौवंशा ६ तिलका ६, सूर ७, करहंस ७, प्रमाणिका ८ (नगस्वरूपिणी, प्रमाणी) श्लोकअनुष्टुप् ८, तोमरि ९, महालक्ष्मी ९, मत्ता १०, हंसी १०, दोधक ११, इन्द्रवज्रा ११, उपेन्द्रवज्रा ११, रथोद्धता ११, उपजाति ११, कुसुमविचित्रा १२, तामरस १२, सुन्दरी १२, ललिता १२, सारंग १२, गौरी १२, मालती १२, मंजुभाषिनी १३, चंडी १३, वसन्ततिलका १४, प्रहरणकलिका १४, नयमालिनी १५, ऋषभ १५, उपमालिनी १५, शशिकला १५, अचलधृति १६, पंचचामर १६, मन्दाक्रान्ता १७, शिखरिणी १७, चित्रलेखा १८, नाराच १८, शार्दूलविक्रीडित १९, मकरन्दिका १९, गीतिका २०, सुवदना २०, स्रग्धरा २१, नरेन्द्र २१, महास्रग्धरा २२, हंसी २२, वागीश्वरी २३, मत्तगयन्द २३ गंगोदक २४, तन्वी २४, सुन्दरी २५, लवंगलता २५, भुजंगविजृम्भित २६॥

९१. समवर्णवृत्त (गण छन्द)— तरल नयन (४ नगण), मोदक (४ भगण), मोतीदाम (४ जगण), तोटक (४ सगण), मैनावली (४ सगण), लक्ष्मीधरा (४ रगण), भुजंगप्रयात (४ यगण), राग्नी (५ मगण), इत्यादि।

९२. दंडक समवर्णवृत्त (गणबद्ध)—चंडवृष्टिप्रपात २७ (२ न. + ७ र.), मतमातंगलीलाकर २७ (९ र.), सिंहविक्रीड़ २७ (९ य.), कुसमस्तवक २७ (९ स.), शालू २६ (त + ८ न + लग), त्रिभंगी ३४ (६ न + २ स. भ. म. स. ग.), व्यालप्रचित ३६ (२ न. + १० र.), लीलाकरप्रचित ४२ (२ न. + १२ र.), इत्यादि ॥

९३. दंडक समवर्णवृत्त (साधारण)—शालू २६ (त. + ८ न. + ल. ग.), त्रिभंगी ३४ (६ न. + स. स. भ. म. स. ग.) इत्यादि ॥

९४. दण्डक समवर्णवृत्त(द्विवर्णिक गणवद्ध)--अशोक पुष्पमंजरी २८ (१४ या अधिक गल), अनङ्गशेखर २८ (१४ या अधिक लग.) ॥

९५. सम मुक्तदंडकवृत्त या कवित्त—घनाक्षरी ३१ (३० वर्ण + ग.), जनहरण ३१ (३० ल. + ग.), कलाधर ३१ (१५ गल. ३२ + ग.), रूपघनाक्षरी ३२ (३० वर्ण + गल.), जलहरण (३० वर्ण + २ ल.), डमरू ३२ ल., विजया ३२ (३० वर्ण + लग.), कृपाण ३२ (३० वर्ण + गल.), देव घनाक्षरी ३३ (३० वर्ण + ३ ल.) ॥

९६. अर्द्धसम वर्णवृत्त—वेगवती (३ स + ग, ३ भ + २ग), भद्रविराट (त ज र ग, म स ज ग ग), द्रुतमध्या (३ भ + ग ग, न ज ज य), उपचित्र (३ स + ल ग, ३ भ + ग ग), केतुमती (स ज स ग, भ र न ग ग), हरिणप्लुता (३ स + लग, न भ भ र), अपरवक्त्र (न न र ल ग, न ज ज र), पुष्पिताग्रा (न न र य, न ज ज र ग), आख्यानिकी (त त ज ग ग, ज त ज ग ग), विपरीताख्यानिकी (ज त ज ग ग, त त ज ग ग), मंजुमाधवी (उपजाति और माधव, या माधव और उपजाति), यवमती (र ज र ज, ज र ज र) ॥

९७. अर्द्धसम मुक्तदंडकवृत्त--शिखा (२८ ल + ग,३० ल + ग),खंजा(३० ल + ग,२८ ल + ग) ॥

९८. विषमवर्णवृत्त (पद चतुरूर्द्ध)--आपीड ८, १२, १६, २०, प्रत्यापीड़ ८, १२, १६, २०, मंजरी १२, ८, १६, २०, लवली १६, १२, ८, २०, अमृतधारा २०, १२, १६, ८ ॥

९९. विषमवर्णवृत्त (साधारण)--उद्गता १०, १०, ११, १३, सौरभक १०, १०, १०, १३, ललित १०, १०, १२, १३, शुद्ध विराट् ऋषभ १४,१३, ९,१५, वर्द्धमान १४, १३, १८, १५ ॥

१००. विषमवर्णवृत्त (अर्द्ध दंडक मुक्तक)--अनङ्ग क्रीड़ा १६, १६, ३२,३२, ज्योतिः शिखा ३२, ३२, १६, १६ ।

१०१. विषमवर्णवृत्त (मराठी)--अभंग ८, ८, ८, ८, ओंवी ८, ९, १०, ४ ।

नोट--उपर्युक्त सर्व प्रकार के अनेकानेक छन्दों में से प्रत्येक के लक्षण और उदाहरण आदि जानने या कवि बनने और पद्य रचना में निपुणता प्राप्त करने के लिये श्रीयुत भानु कवि रचित 'छन्द प्रभाकर',काशी निवासी स्वर्गीय पं० वृन्दावन रचित वृन्दावन विलासान्तर्गत 'छन्दशतक', या 'छंदों मंजरी', आदि छन्दोग्रन्थ देखें ॥

३. काव्य रचना

RHETORICAL COMPOSITION.

नोट १—प्रत्येक भाषा के साहित्य के (भाषा को भले प्रकार जानने में सहायता देने वाली सामग्री के) तीन मुख्य अङ्ग हैं—(१) कोष (२) व्याकरण और (३) काव्य। इन तीनों अङ्गों का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है तथा कोष और व्याकरण जानने का वास्तविक मूल्य उन्हें काव्य में प्रयुक्त करने ही के समय पूर्णरूप से पहचाना जाता है (इसी कारण कुछ विद्वान कोष और व्याकरण को साहित्य की गणना में न लेकर केवल 'काव्य ग्रन्थों' ही को साहित्य ग्रन्थ जानते हैं) और व्याकरण के तीसरे विभाग 'वाक्य-रचना' (गद्य और पद्य दोनों प्रकार की वाक्यरचना) से भी 'काव्यरचना' का पूर्ण सम्बन्ध है। इसीलिये हिन्दी व्याकरण के पाठकों के चित्तमें इस मौलिक अङ्ग को जानने की रुचि उत्पन्न करने के अभिप्राय से इसके भी थोड़ेसे आवश्यक पारिभाषिक शब्दों की परिभाषा संक्षिप्त रूप से यहां देकर काव्यरचना का केवल दिग्दर्शन कराया जाता है॥

नोट २—यह बात विशेषरूप से ध्यान में रखने के योग्य है कि किसी भाषा के गद्यात्मक या पद्यात्मक अलंकृत वाक्यों का यथार्थ अभिप्राय और वास्तविक अर्थ भले प्रकार समझने के लिये सर्व प्रकार के अलंकारों का स्वरूप आदि जानना मनुष्यमात्र के लिये परम आवश्यक है, क्योंकि भाषा के इस अङ्ग के जाने बिना साधारण ग्रन्थों में भी कहीं कहीं आये हुये अलंकृत वाक्यों को अलंकृत न समझ कर शब्दार्थ के अनुसार साधारण अर्थ ग्रहण कर लेने से बहुधा अर्थ का अनर्थ हो जाता है जो मुख्यतः धार्मिक ग्रन्थों के पठन पाठन में विशेष हानि पहुँचाता है॥

१. काव्य

१. काव्य (A Figurative or Charming Composition)—विद्वानों की सुललित रसीली या लोकोत्तर आनन्ददायिनी अलंकृत वाक्यरचना को "काव्य" कहते हैं। "रसात्मकं वाक्यं काव्यं", इति वचनात्॥

२. कवि (A Thoughtful Composer, or Poet)—काव्य लेखक अर्थात् [illegible] के रचयिता को 'कवि' कहते हैं। 'कवि' शब्द का प्रयोग मुख्यतः 'पद्यात्मक काव्य' के रचयिता (Poet) के लिये ही किया जाता है॥

३. प्रतिभा (Genius; Vivid & Bright Conception [illegible])—कोष व्याकरण आदि शब्द शास्त्र, श्रुति, स्मृति, पुराण आदि [illegible], कोक आदि काम शास्त्र तथा ज्योतिष, वैद्यक, [illegible]णित, कला कौशल [illegible] सम्बन्धी सर्व विषयों में प्रवृत्त होने वाली सत्बुद्धि को [illegible] कहते हैं।

४. व्युत्पत्ति (Perfect Proficiency, Thorough Learning & Skill [illegible] Dexterity)—कवि के सांसारिक और पारमार्थिक [illegible] सर्व प्रकार के परिज्ञान और नैपुण्य को व्युत्पत्ति कहते हैं।

५. अभ्यास (Repeated Practice, Constant Study)—निरन्तर बहुत समय तक गुरु के समीप काव्य रचना के बारम्बार अध्ययन और अनुशीलन करने को 'अभ्यास' कहते हैं।

६. शक्ति (Capacity, or Energy)-कवि की काव्यरचन-योग्यता को "शक्ति" कहते हैं जो सहजा (Natural), उत्पाद्या (Artificial) और उभया (Both Natural and Artificial), इन तीन प्रकार की होती है।

नोट--कवि का हृदय, शक्ति, प्रतिभा, व्युत्पत्ति, अभ्यास, कीर्ति और आनन्द, यह सातों वस्तु क्रम से काव्य रूपी वृक्ष की भूमि, बीज, खाद, जल, सूर्यकिरण, पुष्प, और फल हैं।

७. गद्य-काव्य (A Figurative Composition in Prose)--जो वाक्यरचना सुललित, अलंकृत और रसीले वाक्यों में रची गई हो।

१. ससमास-गद्यकाव्य—जिस गद्यकाव्य में सामासिक पदों का बाहुल्य और समास योग्य सर्व पदों में समास हो। (व्या. नं. ४०९--४२२)॥

२. असमास-गद्यकाव्य--जिस गद्यकाव्य में सामासिक पद कोई न हो।

३. समासासमासमिश्रित गद्यकाव्य--जिस गद्यकाव्य में यथा आवश्यक सामासिक और असामासिक दोनों ही प्रकार के पदों की बहुलता हो।

१. कुसुम-गद्यकाव्य--जिस गद्यकाव्य में छोटे छोटे ससमास या असमास अथवा उभय मिश्रित पदों से बने हुए छोटे २ वाक्य हों। (समासापेक्षा ३ भेद)॥

२. गुच्छ-गद्यकाव्य—जिस गद्यकाव्य में ससमास या असमास अथवा उभयमिश्रित पदों से बने हुए बड़े बड़े वाक्य हों। (३ भेद)॥

३. वाटिका-गद्यकाव्य--जिस गद्यकाव्य में ससमास या असमास अथवा उभयमिश्रित पदों से बने हुए छोटे बड़े सर्व प्रकार के वाक्य हों। (३ भेद)॥

१. वृत्तगन्धित गद्यकाव्य—जिस कुसुम या गुच्छ अथवा वाटिका गद्यकाव्य में कुछ मात्राओं या वर्णों अथवा दोनों की आवृत्ति कई कई पदों में हो अथवा वाक्यों में अन्त्यानुप्रास हो। (पद्य. नं. १५; कुसुमादि और समासापेक्षा ९ भेद)॥

२. अवृत्तगन्धित गद्यकाव्य--जिस कुसुम या गुच्छ अथवा वाटिका गद्यकाव्य में वृत्तगन्धित गद्यकाव्य के नियमों का बन्धन न हो। (९ भेद)॥

३. वृत्तावृत्तगन्धित गद्यकाव्य--जिस कुसुम या गुच्छ अथवा वाटिका गद्यकाव्य में कुछ वृत्तगन्धित और कुछ अवृत्तगन्धित दोनों ही प्रकार के गद्य वाक्यों का मिश्रण हो। (९ भेद)॥

नोट--उपर्युक्त भेदों से गद्यकाव्य के २७ साधारण भेद हैं। शब्दालंकारों, अर्थालंकारों और उभयालंकारों के अनेक भेदोपभेदों की अपेक्षा इसके अनेकानेक भेदहैं॥ (नं० ५०-५३)

१. उपन्यास--विद्वानों ने इसके मूल भेद ९ किये हैं--(१) कथा (२) कथानिका (३) कथन (४)आलाप (५) आख्यान (६) आख्यायिका (७) खण्ड कथा (८) परिकथा (९) संमिश्रण।

ऐतिहासिक और कल्पित, इसके यह भी दो भेद हैं। गद्य काव्य के उपर्युक्त २७ भेदों की अपेक्षा ८७ या ५४ या २४३ भेद है और शब्दालंकारादि की अपेक्षा अनेका नेक भेद हैं।

८. पद्य काव्य (A Figurative Composition in Poetry)—जो वाक्यरचना सुललित, अलंकृत और सरस पद्यवाक्यों अर्थात् छन्दों में रची गई हो।

नोट-पद्यरचना सम्बन्धी सर्व छन्दभेद और संगीतकला सम्बन्धी सर्व राग रागनियों के भेदोपभेद आदि इसी 'पद्यात्मक-काव्य' के अन्तर्गत हैं।

९. चम्पू (An elaborate & charming Composition continued both in Prose & Verse)—जिस काव्य में गद्य और पद्य दोनों ही सम्मिलित हों।

नोट--गद्यकाव्य और पद्यकाव्य, इन दोनों के भेदोपभेद ही "चम्पू" के भेदोपभेद हो सकते हैं।

१०. दृश्यकाव्य (Dramatic Composition either in Prose or Verse, or in both)--जिस गद्य या पद्य अथवा उभयरूप काव्य की रचना ऐसी रीति से की गई हो जिसका पूर्ण रसास्वादन केवल पढ़ने सुनने ही से न आवे, किन्तु उसके यथार्थ भाव को अभिनय (नाटक) द्वारा अथवा संगीतकला द्वारा हावभाव युक्त दिखाये जाने ही से प्राप्त हो।

नोट--अनेक प्रकार की राग रागनियों का भी पूर्ण रसास्वादन उन्हें हाव भाव युक्त गाकर दिखाये जाने ही से होने और नाटक में भी इनकी आवश्यकता पड़ने से 'संगीत' की भी गणना दृश्यकाव्य ही में की जा सकती है।

११. श्रव्यकाव्य (Descriptive & Narrative Composition)--जिस गद्यात्मक या पद्यात्मक अथवा उभयरूपकाव्य की रचना इस रीति से की गई हो जो किसी अभिनय (नाटक) द्वारा दिखाई जाने योग्य न हो, किन्तु जिसके पढ़ने सुनने ही से पूर्ण रसानुभव प्राप्त हो।

१२. देवकाव्य—जो काव्यरचना किसी देव या देवी अथवा किसी ऋषि मुनि आदि पूज्य पुरुषों की स्तुति, भक्ति, या प्रार्थना आदि सम्बन्धी हो उसे "देवकाव्य" कहते हैं। जो काव्यरचना पारमार्थिक दृष्टि से आत्मकल्याणार्थ या लोकोपकारार्थ की गई हो वह भी "देवकाव्य" ही में गर्भित है।

१३. नरकाव्य--जो काव्यरचना किसी देव ,या देवी आदि से सम्बन्ध न रख कर किसी साधारण मनुष्य आदि से सम्बन्ध रखती हो उसे 'नरकाव्य" कहते हैं। आत्मकल्याण और लोकोपकार से शून्य सर्वप्रकार की लौकिक घटनाओं आदि सम्बन्धी काव्यरचना 'नरकाव्य" ही में गर्भित है।

२. रस

(SENTIMENT.)

१४. रस (Sentiment)--काव्य के उस आस्वाद को 'रस' कहते हैं जिससे [illegible] चित्त पर काव्यरचना के यथार्थ भाव का पूर्ण [illegible] काव्यरूपी पुरुष [illegible]

'रस' ही है जिस के बिना गद्य या पद्य दोनों ही प्रकार की काव्यरचना शब्द और अर्थ रूपी निर्जीव शरीर के समान समझी जाती है।

१५. विभाव (Causes giving rise to a Sentiment)--रसोत्पत्ति के कारण को 'विभाव' कहते हैं। जैसे--शृङ्गाररसोत्पत्ति के कारण स्त्री, वसन्तऋतु, चाँदनी।

(१) आलम्बन विभाव (The Base of a Sentiment)--रसोत्पत्ति के उस कारण को जिसके आश्रय से रस की स्थिति होती है उसे 'आलम्बन विभाव' कहते हैं। जैसे-शृङ्गाररसोत्पत्ति का आलम्बन विभाव 'स्त्री'।

(२) उद्दीपन विभाव (Supporters or exciters of a Sentiment)--रसोत्पत्ति के उन कारणों को जो किसी रस को उत्तेजित करने में सहायक होते हैं उन्हें 'उद्दीपन विभाव' कहते हैं। जैसे--शृंगाररसोत्पत्ति का उद्दीपनविभाव वसन्तऋतु आदि।

१६. अनुभाव (Ensuant; External Indication of a Sentiment; Appropriate Symptoms to indicate a Sentiment)—रस का प्रभाव प्रतीत कराने वाले बाह्य कारणों या चिह्नों को 'अनुभाव' कहते हैं।

(१) सात्विक अनुभाव (Genuine Symptoms)--रजोगुण और तमोगुण से पृथक् मन की वृत्तिविशेष की प्रतीति जिन कारणों से होती है उन्हें "सात्विक-अनुभाव" कहते हैं।

स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वर्णविपरीतता, अश्रुपात, और तन्मयता या लवलीनता, ये ८ मुख्य "सात्विक अनुभाव" हैं।

(२) व्यभिचारी अनुभाव (Spurious or transitory Symptoms)--रजोगुण या तमोगुणयुक्त मन की वृत्तिविशेष की प्रतीति जिन कारणों से होतीहै और जो कभी उत्पन्न होते, कभी प्रबल होते और कभी नष्ट हो जाते हैं उन्हें व्यभिचारी (निंदित) अनुभाव कहते हैं।

निर्वेद, आवेग, दैन्य, श्रम, मद, जड़ता, उग्रता, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार (मिर्गी), गर्व, मूर्च्छा या मृत्यु, आलस्य, अमर्ष (क्रोध), निद्रा, अवहित्था (चालाकी से अपने को छिपाना), उत्सुकता, उन्माद, शङ्का, अस्मृति, मतिविकार, व्याधि, त्रास, लज्जा, हर्ष, विषाद, असूया (गुणों में दोष लगाना), धृति, चपलता, ग्लानि, चिन्ता, और तर्क (वाद विवाद), ये ३३ मुख्य व्यभिचारी अनुभाव हैं। किसी किसी की सम्मति में "छल" सहित ३४ हैं।

१७. स्थायीभाव (Fixed & Permanent Condition of Mind)—रस के जिस भाव को अविरुद्ध या विरुद्ध कारण भी छिपा न सकें उसे "स्थायीभाव" कहते हैं। रसास्वादन-रूपी अंकुर का मूल यह "स्थायीभाव" ही है।

१८. शृङ्गार रस (Erotic Sentiment)--जिसमें काम के उद्वेग का आगम हो। जैसे--

१. संयोगशृङ्गाररस-दोऊजन दोऊको अनूपरूपनिरखत पावत कहूं न छवि सागरको छोर है।
चिन्तामन केलि के कलानि के विलासनिसों दोऊजन दोऊन के चित्तन के चोर हैं॥
दोऊ जने मन्द मुसकानि सुधा बरसति दोऊ जने छकें मोद मद दुहूं ओर हैं।

सीता जू के नैन रामचन्द्र के चकोर रामचंद्र नैन सीतामुख चन्द्र के चकोर हैं ॥

२. वियोगशृङ्गार रस-शुभ शीतल मन्द सुगन्ध समीर कछु छल छन्द से छ्वै गये हैं।

पद्माकर चांदनी चन्द्र के कछु औरहि डोरन रचै गये हैं ॥

मन मोहन सों बिछुरे इतही बनिक न अबै दिन द्वै गये हैं।

सखि वे हम वे तुम वेई बने पै कछूके कछू मन ह्वै गये हैं ॥

इसके विभाव स्त्री, वसन्त ऋतु आदि हैं। अनुभाव स्तम्भ, स्वेद, मद आदि हैं। और स्थायीभाव 'रति' है।

अनुकूल छन्द--(१)शार्दूल विक्रीडित (२) वसन्ततिलका (३) हरिणी (४) पृथ्वी (५) शिखरिणी (६) मन्दाक्रान्ता (७) मालिनी (८) स्रग्धरा (९) इन्द्रवज्रा (१०) उपेन्द्रवज्रा (११) रथोद्धता (१२) द्रुतविलम्बित।

प्रतिकूल छन्द--पथ्या।

१९. वीर रस (Heroic Sentiment)--जो दान, धर्म और न्याययुद्ध में उत्साहित करे। जैसे--

यश राख्यो यशवन्त ने, भुजबल प्रबल बढ़ाय।

छूटे न तब तक जब तलक, नाहर ना छूट जाय ॥

इसके विभाव दानी, धर्मात्मा और योद्धाओं की सुकीर्ति आदि हैं। अनुभाव दान, धर्म और युद्ध में प्रवृत्ति है। और स्थायीभाव 'उत्साह' है।

अनुकूल छन्द--(१) शार्दूलविक्रीडित (२) वंशस्थ (३) भुजंगप्रयात (४) पंचचामर (५) शिखरिणी (६) अमृतध्वनि (७) कृपाण (८) स्रग्धरा (९) इन्द्रवज्रा (१०) उपेन्द्रवज्रा (११) वीर ॥

प्रतिकूल छन्द--प्रहर्षिणी।

२० करुणारस (Pathetic Sentiment)--जिससे चित्तमें दया, अनुकम्पा और अनुग्रह का भाव उत्पन्न हो। जैसे--

पत उतरत मम बसन सँग, हे पत राखनहार।

आरत हो द्रौपदि अबल, रोगे करत पुकार ॥

इसके विभाव इष्टवियोग,अनिष्टसंयोग, और शरीरपीड़ा आदि हैं। अनुभाव अश्रुपात, विलाप आदिहैं। और स्थायी भाव 'शोक' है।

अनुकूल छन्द--(१) मालिनी (२) द्रुतविलम्बित (३) मन्दाक्रान्ता (४) पुष्पिताग्रा।

प्रतिकूल छन्द--दोधक।

२१ अद्भुतरस (Marvellous Sentiment)--जिससे विस्मय और आश्चर्य उत्पन्न हो। जैसे--

तव यश सुतियन तव गुनन, हुउ ले पोवत माल।

अछिद् आद्य गुन अनत लख, भइ विस्मित सुरबाल ॥

इसके विभाव अपूर्व और असम्भव पदार्थावलोकन आदि हैं। अनुभाव टकटकी बांध कर देखना, आश्चर्यसूचक वचनोच्चारण आदि हैं। और स्थायीभाव 'विस्मय' है।

अनुकूल छन्द—(१) शार्दूलविक्रीड़ित (२) इन्द्रवज्रा (३) वसन्ततिलका (४) नन्दनी (५) कुसुमविचित्रा (६) शालिनी (७) स्वागता (८) उपचित्रा।

प्रतिकूल छन्द--शिखरिणी।

२२. हास्यरस (Comic Sentiment)—जिससे उल्लास और हँसी उत्पन्न हो। जैसे--

तीन दिना सब शास्त्र पढ़, एक दिना पढ़ वेद।
कुक्कुट मिश्र पधारि हैं, सिर पर धरे नवेद॥

इसके विभाव भेषविकृति, अङ्गचेष्टा, हास्यवचन आदि हैं। अनुभाव मुख की आकृतिविशेष, मुस्कराहट, हँसी आदि हैं। और स्थायीभाव 'हँसना' है।

अनुकूल छन्द—(१) दोधक (२) तोटक (३) भुजंगप्रयात, और वे सब वृत जिनका प्रत्येक पद में विच्छेद हो।

प्रतिकूल छन्द--पृथ्वी।

२३. भयानकरस (Terrible Sentiment)--जिससे भय उत्पन्न हो। जैसे—

घन तरु तिमिर समूह बन, तामें बाघ लखाय।
त्रास युक्त कम्पत भगी, भिल्लनारि भय खाय॥

इसके विभाव डरावने पदार्थ या वचन आदि हैं। अनुभाव कम्पन, मुख का पिलापन, आदि हैं। स्थायीभाव 'भय' है।

अनुकूल छन्द--(१) शार्दूलविक्रीड़ित (२) स्रगधरा (३) पथ्या।

प्रतिकूल छन्द--मालिनी।

२४. वीभत्सरस (Disgustful Sentiment)--जो घृणा उत्पन्न करावे। जैसे—

हाड़ मास मल मूत्र की, बँधी पोट नर देह।
ढके चाम उघरे कुव्रण, कुष्ट दस्त अरु मेह॥

इसके विभाव दुर्गंधित पदार्थ आदि हैं। अनुभाव नाक मुंह सिकोड़ना, थूकना आदि हैं। और स्थायीभाव 'जुगुप्सा' है।

अनुकूल छन्द--(१) शार्दूलविक्रीड़ित (२) स्रगधरा (३) रथोद्धता (४) वंशस्थ।

प्रतिकूल छन्द--मन्दाक्रान्ता।

२५. रौद्ररस (Wrathful Sentiment)—जिनसे निर्दयता और क्रोधादि उत्पन्न कराने वाला भाव प्रकट हो। जैसे—

मनुज पशू गुरु पातकी, कीने कर्म कठोर।
तुम तनु आमिष रुधिर की, देहुँ बली चहुँ ओर॥

इसके विभाव शत्रुके दुर्वचन, स्वपक्ष की हानि, आदि हैं। अनुभाव नेत्रोंकी लाली, हाथ पाँव पटकना, क्रोध भरे अप शब्द बोलना, भृकुटि चढ़ाना आदि हैं। और स्थायीभाव 'क्रोध' है।

अनुकूल छन्द—(१) शार्दूलविक्रीड़ित (२) स्रगधरा (३) हरिणी (४) रथोद्धता (५) अनुष्टुप।

प्रतिकूल छन्द--शिखरिणी।

२६. शांतरस या अध्यात्मरस (Quietistic Sentiment)--जिस से क्रोध मान माया लोभ आदि कषायों के छुड़ाने और विषय भोगों से विरक्त कराने वाला भाव उत्पन्न हो। अथवा जिसमें आत्मविचार और आत्मरमण का ऐसा अपूर्व भाव प्रकट हो जिससे ज्ञानी पुरुष सर्व रसों को एक आत्मरमण ही में अवलोकन करै। जैसे--

धन दारा सुत भ्रात मित, मात पिता परिवार।
मृत्यु समय को ? साथ दे, देखो आंख उघार॥
देहादिक के मोहवश, जीव भ्रमैं संसार।
आत्मज्ञान पाये बिना, किमि हो भव दध पार॥
शुद्धातम अनुभव क्रिया, शुद्ध ज्ञान दृग दौर।
दुखमिट सुखसाधन यही, वाक् जाल सब और॥

भिन्न भिन्न नवरस लखे, सोतो ज्ञानी नाहिं।
ज्ञानी सब रस स्वाद ले, अध्यातम रस माहिं॥

यथा--गुण विचार **शृङ्गार**, **वीर** उद्यम उदार रुख।
करुणा समरसरीति, **हास्य** हृदय उछाह सुख॥
घर्म शत्रु दल मलन, **रुद्र** बरतै तिहिं थानक।
तन विलेच्छ **वीभत्स**, द्वन्द्व दुख दशा **भयानक**॥
अद्भुत अनन्त बल आतम निज, **शांत** सहज वैराग्य ध्रुव।
नव रस विलास परकाश तब, जब सुबोध घट प्रकट हुव॥

इसके विभाव अध्यात्म ग्रन्थों का मनन, अध्यात्मचर्चा, सम्यग्ज्ञान, विषय भोगों की क्षणिकता और संसार की असारता पर दया आदि हैं। अनुभाव चित्त की प्रसन्नता, भोगों से उदासीनता, ममत्वत्याग आदि हैं। और स्थायी भाव 'आत्मानन्द' है।

अनुकूल छन्द--(१) शार्दूलविक्रीडित (२) शिखरिणी (३) मन्दाक्रान्ता।

प्रतिकूल छन्द--कुसुमविचित्रा।

२७. वात्सल्यरस (A Sentiment full of Fond Affection)--जिसमें पुत्र मित्रादि में अथवा साधर्मी पुरुषों में स्नेह उत्पन्न कराने वाला भाव प्रकट हो।

इसके विभाव सुपुत्र मित्र आदि हैं। अनुभाव प्रेमदृष्टि प्रेमाश्रुपात, प्यार, हर्ष आदि हैं। और स्थायीभाव स्नेह है।

नोट--साधारणतः रस ९ ही माने जाते हैं। वात्सल्य एक दशवां रस है जो नव रस की गणना से अलग है।

२८. रसाभास (Semblance of a Sentiment)--जो रस वास्तविक नहो किन्तु उसमें रस की सी झलक या सादृशता हो। इसीलिये ऐसे रस को 'रसदोष' या 'दूषित रस' भी कहते हैं।

(१) शृंगार रसाभास--पर स्त्री-पुरुष में या प्रेमशून्य पति-पत्नि में।

(२) वीर रसाभास—निर्बल निर-अपराध या धर्मात्मा के साथ युद्धोत्साह में, लोक प्रतिष्ठा या कीर्ति की अभिलाषायुक्त दान पूजा आदि के उत्साह में।

(३) करुणा रसाभास—कपटी या कृपण आदि की अनुकम्पा में।

(४) अद्भुत रसाभास--साधारण पदार्थावलोकन आदि में।

(५) हास्य रसाभास—गुरु आदि की हँसी उड़ाने में।

(६) भयानक रसाभास--तत्वज्ञानी या वीर पुरुषों की आत्मा में।

(७) बीभत्स रसाभास—गुरु पुत्र आदि के व्रण आदि की परिचर्य्या में।

(८) रौद्र रसाभास--गुरु आदि पर कोप करने में।

(९) शान्त रसाभास—नीच व्यक्ति के हृदय में या स्वर्गादि प्राप्ति की अभिलाषा से कोपादि त्यागने में।

(१०) वात्सल्य रसाभास—प्रत्युपकार या सुख प्राप्ति की आशा से स्नेह जनाने में॥

२. काव्य गुण

(QUALITIES OF A RHETORICAL COMPOSITION)

२९. औदार्य—काव्य में जहां अर्थ की श्रेष्ठता के बोधक पदान्तरों से सम्मिलित पदों का नियोजन हो। जैसे--

दोहा--अन्ध हस्ति शोभित सदन, श्रीरति पंकज छत्र।
नेमिनाथ तज कीन्ह तप, रैवत गिरि एकत्र॥

३०. ३१. समता और कान्ति—पद्य की रचना में जब विषमताका अभाव अर्थात् सरलता हो तो उसे 'समता गुण' और जब अर्थ और पदोंकी उज्वलता होतो उसे 'कान्ति गुण' कहतेहैं।

अविषमता जहं बन्ध में, सो 'समता' गुण जान।
जहं उज्वल हों अर्थपद, सो गुण 'कान्ति' बखान॥

समता—मुक्त पर अति लावण्य की, शोभित धार अपार।
मुक्ता माणिक सम जटित, कहा बापरो हार॥

कान्ति—इस मुनि ने पर जन्म में, तज घर वनफल खाय।
विल्व दलन से हर चरण, पूजे शुद्ध मन लाय॥

३२. अर्थव्यक्ति गुण—जहां अर्थ में सुख बोध्यता या प्रमाणता की अनावश्यक्ता हो।

दोहा—जहँ अमेयता अर्थ में, 'अर्थव्यक्ति' तहँ जान।
तुम दल रज सूरज छिपे, दिन हो रजनि समान॥

३३. प्रसन्नता गुण
प्रसाद गुण
प्रसक्ति गुण
} जहां श्रवण मात्र ही से तुरन्त अर्थ बोध हो जाय।

दोहा--अर्थ बोध जहं शीघ्र हो, सो प्रसाद गुण नाम।
सोहहिं सुरतरु सम सदा, वांछितार्थप्रद राम॥

३४. समाधिगुण—जहां अन्य वस्तु का गुण अन्य में नियोजित किया जाय।

दोहा--सो समाधिगुण अन्य के, हो निवेश अन्यत्र।

अरि नारी अँसुवनलुं हीं, नृपयश अंकुर पत्र॥

३५. श्लेषगुण--जहाँ परस्पर गुंफित हुए से पद हों।

दोहा--होत परस्पर पद जहां, गुंफित से सो श्लेष।

तरवर तर वर विन तियहिं, युगसम जात निमेष॥

३६ ओजगुण--जहाँ मनोहर छोटे बड़े समासों की बहुलता हो तथा पवर्ग टवर्ग की या संयुक्ताक्षरों और रेफयुक्त वर्णों की अधिकता हो। जैसे--

पिप्पि ठट्ठ गव्वरनि को, युध्यत उठे बरछि।

पट्टत मद्दि वन कट्टि शिर, कुद्धित खग्ग सरछि॥

३७ माधुर्य गुण--जहाँ टवर्ग के बहिष्कारयुक्त अर्थ और पदों में सरसता हो। जैसे--

दोहा--जिहि रहीम तनमन दियो, कियो हिये बिच भौन।

तासों सुख दुख कहनकी, रही बात अब कौन॥

३८. सौकुमार्य गुण--जहाँ अर्थ और पदों में अक्षर कठोर न हों। जैसे--

दोहा--तव प्रताप दीपक मनों, जो नहिं हो करवाल।

सो इन किस विधि करदिये, शत्रुन के मुखकाल॥

४. काव्यरीति

(STYLE OF A RHETORICAL COMPOSITION)

३९ काव्यरीति--काव्य के पदों की संकलना या सघटनाविशेष को 'काव्यरीति' कहते हैं।

४०. १ उपनागरिका--जिस में माधुर्यगुणयुक्त सानुनासिक वर्ण की बहुलता और ट ठ ड ढ ण वर्णों का बहिष्कार हो।

४१. २. कोमला--जिसमें सानुनासिक व संयुक्त वर्ण न हों या कम हों, समास रहित या अल्प सामासिक शब्द हों, योजना सरल और प्रसादगुणयुक्त हो और ट ठ ड ढ ण वर्णों का सर्वथा बहिष्कार हो।

४२. ३ परुषा--जिसमें कठोर वर्ण ट ठ ड ढ ण, द्वित्त वर्ण, संयुक्तवर्ण, रेफ या दीर्घ समास का बाहुल्य ओजगुण युक्त हो।

४३. ४. वैदर्भी रीति--विना सामासिक पदों वाली रीति को अथवा उपनागरिका और कोमला की रीति को 'वैदर्भीरीति' कहते हैं।

४४. ५. गौड़ी रीति--बड़े समासान्त पदों वाली रीति को अथवा परुषा की रीति को 'गौड़ीरीति' कहते हैं।

४५. ६. पांचाली रीति-वैदर्भी और गौड़ी दोनों रीतियोंके मिश्रणको 'पांचाली रीति' कहते हैं।

४६. ७. लाटी रीति-जब पांचाली रीतिमें गूढ़ता कुछ कम हो तो इसेलाटी रीति कहते हैं

५. काव्य दोष

(DISQUALITIES IN A RHETORIC

४७ शब्द दोष (Defects in the use of words [illegible]

(१) अनर्थक दोष—किसी की स्तुति में विरुद्ध या अनुपयुक्त शब्दों के आ जाने को 'अनर्थक दोष' कहते हैं। जैसे--

अनुपयुक्त जो स्तुति विषै, होत अनर्थक सोय।
नमन करूँ गणनाथ को, लम्ब पेट युत जोय॥

(२) वैफल्य या निरर्थक दोष—जहां निःकारण अनावश्यक शब्दों का प्रयोग किया जाय। जैसे—

तुम तुम तुम तुम नहीं नहीं आये। हम हम को तुम कहीं न पाये॥

(३) श्रुति कटुक दोष—शृंगारादि के वर्णन में किसी कठोर या कर्ण अप्रिय शब्दों के प्रयोग को 'श्रुति कटुक दोष' कहते हैं। जैसे--

अति कठोर जहं वर्ण हो, कर्ण कटुक तिहिं जान।
मुक्ता से माणिक भई, 'दाष्ट्रा' चावें पान॥

(४) व्याहतार्थ दोष--किसी वाक्य में ऐसे शब्द का प्रयोग करना जिससे वांछितार्थ से विपरीत अन्य अर्थ भी निकलता हो उसे "व्याहतार्थ दोष" कहते हैं। जैसे—

व्याहतार्थ जहं इष्ट का, बाधक अर्थ लखाय।
भूतलोपकारी नृपति, तुम सबतें अधिकाय॥

यहां 'भूतलोपकारी' पद ऐसा डाला गया है जिसका वांछित अर्थ"पृथ्वीतल का उपकारी" और दूसरा उससे विपरीत अवांछित अर्थ'भूत लोपकारी',अर्थात् "प्राणियों का नाशक" भी निकलता है।

(५) अलक्षण दोष—किसी वाक्य में शब्द शास्त्र के विरुद्ध पद प्रयोग को "अलक्षण दोष" कहते हैं। जैसे—

शब्द शास्त्र बरताव ते, पृथक अलक्षण होत।
तारक बिबे अकाश में, होत चन्द्र उद्योत॥

यहां "तारक" शब्द का प्रयोग शब्द शास्त्र के विरुद्ध है॥

(६) स्वसंकेत प्रकृप्तार्थ दोष—वांछित अर्थ प्रकट करने के लिये जहां किसी स्वकल्पित सांकेतिक शब्द का प्रयोग किया जाय तो उसे 'स्वसंकेत प्रकृप्तार्थ दोष' कहते हैं। जैसे—

स्वसंकेत प्रकृप्तार्थ जो, संकेतार्थ विकाश।
रावणसुत मुख में धरे, होय काश का नाश॥

यहां 'रावणसुत'किसी काशरोगनाशक औषधिका कविका स्वकल्पित नाम है।

(७) अप्रसिद्ध दोष—जहां किसी ऐसे शब्द का प्रयोग किया जाय जिसका प्रसिद्ध अर्थ अनुपयुक्त होने से कोई अप्रसिद्ध अर्थ लगता हो, अथवा अनुप्रासालंकार के लिये किसी अप्रमाणिक शब्द या अर्थ का प्रयोग किया जाय तो ऐसे प्रयोग को "अप्रसिद्ध दोष" कहते हैं। जैसे--

दोहा—अप्रसिद्ध जहं अर्थ में, अप्रसिद्ध पदयोग।
ग्रीषम ऋतु में अधिक बन, पीवत हैं सब लोग॥

"वन" शब्द का प्रसिद्ध अर्थ "जंगल" और अप्रसिद्ध अर्थ "जल" है। यहां प्रसिद्ध अर्थ अनुपयुक्त होने से अप्रसिद्ध अर्थ लगाना पड़ता है।

(८) असंमत दोष--जिस शब्द का अर्थ अप्रसिद्ध तो न हो परन्तु सर्वत्र संमत भी न हो अथवा जहां किसी योगरूढ़ शब्द का प्रयोग किया गया हो परन्तु उसका अर्थ यौगिक शब्द की समान व्युत्पत्ति से लगता हो तो ऐसे शब्द के प्रयोग को "असंमत दोष" कहते हैं। जैसे—

दोहा—योगरूढ़ि पद में जहां, अर्थ योगवश होय।
दोष असंमत सो यथा, ओढ़ अँगरखा सोय॥

(९) अप्रयुक्तदोष-यमकालंकार में यमक प्रदर्शक शब्दोंका प्रयोग किसी छन्दके एक, दो या चार पादों में तो मान्य है परन्तु तीन पादों में अमान्य और दूषित है। जैसे—

तो पर वारौं उरवसी, सुन राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी, है उरवसी समान॥

(१०) ग्राम्यपदप्रयुक्ति दोष--जहां किसी अनुचित अयुक्त ग्रामीण पद का प्रयोग किया गया हो तो उसे 'ग्राम्यपदप्रयुक्ति दोष' कहते हैं। जैसे—

दोहा--नागर कवि जो ग्राम्य पद, युक्त करे नहिं ठीक।
जिमि विशाल प्रासाद में, न लघु ओबरी नीक॥

नोट--इतिहास पुराणादिक में, देव स्तुति या वन्दना आदि में, चित्रादिक शब्दालंकारों में और आर्षवाक्यों में उपरोक्त दशों दोष प्रायः अमान्य हैं।

४८. वाक्य दोष (Defects in Composing a Sentence):—

(१) खंडित दोष--जहां कोई वाक्य किसी अन्य वाक्य के बीच में आ जाने से विच्छिन्न हो जाय तो उसे "खंडित दोष" कहते हैं। जैसे—

वाक्यान्तर से वाक्य में, खंडित दोष बखान।
'जिन' जिनको नुत सुर करैं, करो सदा कल्यान॥

(२) व्यस्त सम्बन्ध दोष--किसी वाक्य में जहां सम्बन्ध कारक

दूर रहे तो ऐसे प्रयोग को "व्यस्त संबन्ध दोष" कहते हैं।

दोहा--संबन्धी पद दूर तें, होत "व्यस्त
मेरो दीन दयाल प्रभु, कब

(३) असंमित दोष--वाक्य में जब बहु शब्दों के
केवल अल्प अक्षरों के एक साधारण शब्द ... ाव्य
बाहुल्य और अर्थ की अल्पता हो तो

१. "तमीरिपुविपक्षारिप्रिया" का ... ।
अर्थात् तम का शत्रु सूर्य, ... ण यह
प्रिया लक्ष्मी))।

२. दोहा-अजा सहेली तासु रिपु, ता जननी भरतार।
ताके सुत के मित्र को, भजिये बारम्बार॥

नोट—कोई कोई विद्वान् इसे दोष न मानकर 'दृष्टिकूटक' नामक शब्दालंकार की गणना में रखते हैं।

(४) अपक्रम दोष—जहां वाक्य में योग्य या प्रसिद्ध क्रम का उल्लंघन किया जाय तो उसे 'अपक्रम दोष' कहते हैं। जैसे—

१. उसने भोजन किया, स्नान किया, देव वन्दना की और तिलक लगाया।

२. दोहा—क्रम प्रसिद्ध लंघन किये, होय अपक्रम जाय।
तिलक किये न्हाये पिया, पौढ़े पलङ्ग बिलाय॥

(५) छन्दोभ्रष्ट दोष—जब कोई पद्यात्मक वाक्य छन्द शास्त्र के नियमों से विरुद्ध हो तो उसे 'छन्दोभ्रष्ट दोष' कहते हैं। जैसे—

दोहा—छन्दोभ्रष्ट जो पद्य में, छन्द रीति विपरीत।
कान्ता कंबल कुथ बिना, सभी को सतावे शीत॥

(६) रीतिभ्रष्ट दोष या रीतिविरोध दोष—जहां गौड़ी, वैदर्भी, पांचाली आदि रीतियों का पूर्वा पर निर्वाह न हो। अथवा जहाँ किसी रस में अनुपयुक्त रीति का प्रयोग हो। जैसे—

कवि पजनेश केलि मधुप निकेत नव दर मुक्त दिव्य वरी वटिका लटीकी है।
विधुवर वेश चक्र चक्र रविरथ चक्र गोमती के चक्र चक्रताकृत घटी की है॥
नीवी तट त्रिवली वलीपै द्युति कोस तुण्ड कुण्डली कलित लोमलतिका वटीकी है।
उपटीकी टीकी प्रभाटीकी वधूटीकी नाभिटीकी घुर्जटीकी अरु कुटीकी सम्पुटीकी है॥

यहाँ शृङ्गार रस में परुषारीति (कठोर वर्णों) का प्रयोग है; मधुर वर्ण प्रयोग में आने चाहिये थे (नं० ४२)।

(७) यति भ्रष्ट दोष—जहां पद्य के किसी पादान्त को विराम (विश्राम) के लिये तोड़ना (भंग करना) पड़े, अर्थात् जहां किसी शब्द का कुछ भाग एक पाद में और शेष भाग अगले पाद में ले जाना पड़े तो उसे "यति भ्रष्ट दोष" कहते हैं। जैसे—

दोहा-यति भ्रष्ट में होत है, पदके बीच विराम।
जैसे रे नर जाय गं,गा तट भज हरिनाम॥

(८) असक्रिया या क्रियाभाव दोष—जहां आवश्यकता होने पर भी वाक्य में क्रियापद न हो। जैसे—

दोहा—क्रिया न हो जहँ वाक्यमें, ताहिअसक्रिय जान।
गन्धाक्षत फल विमल जल, पुष्पों से भगवान॥

(९) दूषित वाक्य दोष—वाक्य में किसी विशेष कारण के बिना ही देश, काल, आगम, अवस्था, गुण, जाति, वस्तुस्वभाव, प्राकृतिक नियम आदि में से किसी के विरुद्ध किसी अर्थ की योजना करने को 'दूषित वाक्य दोष' कहते हैं। जैसे—

दोहा--बुढ़िया चढ़ी पहाड़ ने, उतरी सागर पार।
पूँछ उठा कर देख ले, होली के दिन चार॥

(१०) दूषित उपमा या दूषित रूपक दोष--जहाँ हास्य रस या किसी की निन्दा न होने पर भी या अन्य किसी कारण बिना ही उपमेय की उपमा अति न्यूनाधिक उपमान से दी जाय या उपमेय और उपमान में परस्पर लिंग, वचन, काल, विधि आदि में भेद हो अथवा अप्रसिद्ध या असंभव उपमा हो तो यह दूषित उपमा दोष है। (न ७१, ७२, ८६,) जैसे--

१ जातिगत न्यूनता--आज पूर्णमासी का चंद्रमा कांसी की थाली सम अति शोभनीक है। (यहां लिंग दोष भी है)।

२ प्रमाणगत न्यूनता--इस समय सूर्य अग्नि के फुलिंगों के समान ऐसा चमकीला और उष्ण है। (यहां वचन दोष भी है)।

३ धर्मगत न्यूनता--स्वर्ण की माला कण्ठ में पहिने मद झिरता हुआ यह हाथी बरसते हुए काले बादल समान दीख पड़ता है। [यहां उपमान में उपमेय के एक धर्म (स्वर्णमालायुक्त होना) की उपमा 'बिजुली' की न्यूनता है।

४. जातिगत अधिकता—कमल पत्र पर उपस्थित बैठा हुआ चकवाक ऐसा जान पड़ता है मानो साक्षात ब्रह्मा जी ही सृष्टि रचने के लिये आज कमलनाल से जन्मे हैं। (यहां यदि 'आज' के स्थान में युग की आदि में', और 'है' के स्थानमें 'थे' शब्द रख दिये जायं तो इस वाक्य में 'काल दोष' भी उत्पन्न हो जाय)।

५ प्रमाणगत अधिकता--दशानन बाके सोहने, यज्ञशिला अनुहार।

६ धर्मगत अधिकता--मद झिरता हुआ यह हाथी मानो चमकती हुई बिजुरी युत बरसता हुआ काला बादल है।

७ असादृश्य या अप्रसिद्ध--काव्य चंद्र रचना करत, अर्थ किरण जुत चारु।
(यहाँ अप्रसिद्ध उपमा दोष के अतिरिक्त 'विधिभेद' दोष भी है। क्योंकि काव्य से अर्थ रचना और चंद्र से किरण रचना होने में विधि का अन्तर है)।

८ असम्भव--धनु मंडल सों परतु है, दीपत शर खर धार।
जिम रवि के परदेश तें, परत ज्वलित जलधार॥
(यहां 'जलधार' के स्थान में 'परधार' होने से असम्भव दोष का अभाव हो जायगा)।

६. अलङ्कार

(FIGURES OF SPEECH OR SCIENCE OF RHETORIC.)

४२ अलङ्कार—काव्य के उस भूषण या चमत्कार को 'अलङ्कार' कहते हैं जिससे काव्य रचना में चित्ताकर्षक लालित्य और मनोहारिणी सुन्दरता व रमणीयता आजाय।
(काव्यरूपी पुरुष की रसरूपी आत्मा और शब्द व अर्थरूपी शरीर का आभूषण यह 'अलङ्कार' ही है जिससे रस और शब्द व अर्थ की शोभा पूर्ण रूप से बढ़ जाती है)।

५०. शब्दालङ्कार (Rhetoric in Words)--काव्य के उस अलङ्कार को 'शब्दालंकार' कहते है जो किसी वाक्य को विशेष शब्द के प्रयोग से अलंकृत करे और उस शब्दविशेष को हटा कर उसके स्थान में उसका पर्यायवाची कोई अन्य शब्द रख देने से जो नष्ट हो जाय ।(नं. ६२-७०) ॥

५१. अर्थालङ्कार (Rhetoric in Signification)--काव्य के उस अलङ्कार को 'अर्थालङ्कार'कहते हैं जोकिसी वाक्यके अर्थमें कोईविशेष चमत्कार उत्पन्नकरे (नं.७१···)॥

५२. उभयालङ्कार (Rhetoric both in Words & meaning)--काव्य के उस अलङ्कार को 'उभयालङ्कार' कहते हैं जिससे किसी एक ही वाक्य में शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों का समावेश किया जाय ।

५३.संसृष्टालंकार (Mixed form of Rhetoric)--एक ही वाक्य में जहां दो या अधिक प्रकार के शब्दालङ्कारों या अर्थालङ्कारों अथवा उभयालङ्कारों का सम्मेलन हो तो वहां उसे "संसृष्टालङ्कार" कहते हैं ।

५४, ५५, ५६. वाचक, वाच्यार्थ, अभिधा--किसी वस्तुबोधक शब्द को "वाचक" कहते हैं । किसी शब्द से जिस वस्तु का बोध हो उसे "वाच्य" या "वाच्यार्थ" कहते हैं । और किसी शब्द के अर्थ का बोध कराने वाली शब्द की शक्ति को 'अभिधा' कहते हैं ।

५७, ५८, ५९. लक्षक, लक्ष्यार्थ, लक्षणा--अध्याहार से यथार्थ अर्थ का बोध कराने वाले शब्द को 'लक्षक' कहते हैं । लक्षक से जिस वास्तविक अर्थ या वस्तु का बोध हो उसे 'लक्ष्य' या 'लक्ष्यार्थ' कहते हैं । और लक्षक के अर्थ का बोध कराने वाली लक्षक की शक्ति को 'लक्षणा' कहते हैं ।

६०, ६१, ६२. व्यंजक, व्यंग्यार्थ, व्यंजना--अभिधा और लक्षण शक्तियों से न जाने जा सकने वाले किसी गुप्त अर्थ का बोध कराने वाले शब्द को 'व्यंजक' कहते हैं । व्यंजक से जिस गुप्त अर्थ या वस्तु का बोध हो उसे 'व्यंग्य' या 'व्यंग्यार्थ' कहते हैं । और व्यंजक के अर्थ का बोध कराने वाली व्यंजक की शक्ति को 'व्यंजना' कहते हैं ।

७. शब्दालङ्कार (नं० ५०)

६३. पुनरुक्तवदाभास (पुनः उक्तवत् आभास)--वह शब्दालंकार है जिसमें एक ही अर्थ के ऐसे दो या अधिक भिन्न शब्दों का प्रयोग हुआ हो जो देखने में तो पुनरुक्त दोष से दूषित जान पड़ें , वरन् वास्तव में ऐसा न हो ।किन्तु उस पर्यायवाची पुनरुक्त शब्द का यथार्थ अर्थ उस के पद भंग किये जाने पर या अन्य किसी रीति से कोई दूसरा ही निकले । जैसे—स्वर्णकार सुनार (अच्छा बालक या अच्छा नर-समूह अथवा अच्छी स्त्री या अपनी स्त्री) के लिये गहना गढ़ रहा है । यहां 'स्वर्णकार' और 'सुनार' यह दोनों शब्द यद्यपि एकार्थी हैं तथापि दूसरे शब्द 'सुनार' के अन्य भी कई अर्थ अर्थात् 'अच्छा बालक' या अच्छा 'नरसमूह' अथवा 'अच्छी स्त्री' या 'अपनी स्त्री' हैं । यहां इनमें से कोई अर्थ यथा आवश्यक बिना पदभंग किये ही उपयुक्त हो सकता है । निम्नलिखित दोहे की पहली पंक्ति सभंग पद का और दूसरी पंक्ति अभंगपद का उदाहरण है:—

सदसारथि अरु सूत पद, गज तुरंग बहु सैन ।
निकट तिहारे रहत नृप, सुमनस विबुध सुबैन ॥

यद्यपि यहां सारथि और सूत, तथा सुमनस और विबुध पदार्थी शब्द हैं तथापि 'सारथि' शब्द के पदभंग से (अर्थात् 'सा' को सद के साथ मिला कर अर्थ लगाने से), और सुमनस का अर्थ मंत्री और विबुध का अर्थ पंडित और सुबैन का अर्थ कवि लगाने से बिना पदभंग ही उपयुक्त अर्थ हो जाता है।

६४. अनुप्रास (Alliteration)--वह शब्दालङ्कार है जिसमें माधुर्य्यादि गुणयुक्त एक या अधिक व्यंजन वर्ण एक या अधिक बार क्रमशः दुहराये गये हों।

(१) छेकानुप्रास (Single Alliteration)--जिस अनुप्रासमें कई व्यंजन केवल एक एक बार क्रमशः और पास पास के शब्दों में दोहराये गये हों । जैसे--

१. सरस बिरस, साजन सजन, हाथ हथकड़ी डार । यहां र स, सजन, ह थ, क्रम से एक एक बार और पास पास के शब्दों में दोहराये गये हैं।

२. अति गइ गहे बाजने बाजे। इसमें ग ह, ब ज की द्विरुक्ति है।

(२) वृत्यानुप्रास (Harmonious Alliteration)--जिस अनुप्रास में एक या अधिक व्यंजन दो या अधिक बार दुहराये गये हों।

१. उपनागरिका--जिसमें माधुर्यगुणयुक्त सानुनासिक वर्ण का बाहुल्य और ट ठ ड ढ ण वर्णों का बहिष्कार हो। जैसे--

"रघुनन्द आनँद कन्द कौशलचन्द दशरथ नन्दनम" । (नं० ४०)

२. कोमला-- जिसमें सानुनासिक व संयुक्त वर्ण न हों, या कम हों समास रहित या अल्प सामासिक शब्द हों, योजना सरल प्रसादगुणयुक्त हो और ट ठ ड ढ ण वर्णों का सर्वथा बहिष्कार हो। जैसे--

"सत्यसनेह सील सुखसागर"। (नं० ४१)

३. परुषा--जिसमें कठोर वर्ण ट ठ ड ढ ण, द्वित्ववर्ण, संयुक्त वर्ण, रेफ, दीर्घ समास की बाहुल्यता और ओजगुणयुक्त हो । जैसे--

"वक्र वक्र, करि पुच्छ करि, रुष्ट ऋच्छ कपि गुच्छ" (नं० ४२)

(३) श्रुत्यानुप्रास (Melodious Alliteration)--जिस अनुप्रास में तालव्य या कण्ठ्य या दोनों व्यंजनों की द्विरुक्ति हो। जैसे--

"जयति द्वारिकाधीश, जय सज्जन सन्ताप हर"।

(४) लाटानुप्रास (Alliteration containing Repetition in the same words, but in different application)--जिस अनुप्रास में अधिक या सर्व शब्दों की द्विरुक्ति हो परन्तु शब्दान्वय भेद से अर्थ में भेद हो जाय। जैसे--

१. पीय निकट जाके नहीं, घाम चाँदनी ताहि।
पीय निकट जाके नहीं घाम चाँदनी ताहि ॥

२. पीय निकट जाके नहीं घाम चाँदनी ताहि।
पीय निकट जाके रहे, घाम चाँदनी याहि ॥

(५) अन्त्यानुप्रास (Final Alliteration)—जिस अनुप्रास में १. किसी छन्द के सब पादों के अन्त में, २. या दो सम और दो विषमपादों के अंत में, ३. या केवल दो समपादों में, ४. या केवल दो विषमपादों में, ५. या दो दो समविषम सम-विषम पादों में, ६. अथवा गद्य या पद्यमें नियम रहित किन्हीं दो या अधिक पदों के पदान्त में एक एक या अधिक २ स्वर-व्यंजनों की आवृत्ति हो। जैसे—

१. हे मूढ़ अचेतन, कछुइक चेतो, आखिर जग में मरना है।
नर देही पाई, पूर्व कमाई, तिससों भी फिर टरना है॥
क्यों धर्म बिसारो, पाप चितारो, इन बातन क्या तरना है।
जो शूर कहाये, हुकुम चलाये, तौ भी क्या ले करना है॥

२. जिहि सुमरत सिधि होय, गण नायक करि वर वदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धिराशि शुभ गुण सदन॥

३. देह सनेह कहा करे, देह मरन को हेत।
उत्तम नर भव पाय के, मूढ़ अचेतन चेत॥

४. निरावरण निर्दोष, वन्दों श्रीपरमात्म पद।
वांछितार्थ सुख पोष, विघन हरन मंगल करन॥

५. मोह मगन संसार विषयसुख में रहै। करे न आप सम्हार धनादिक संगू है॥
जाने यह थिर वास नाश नहिं होयगो। पाके मानुष जन्म अकारथ खोयगो॥

६. जहां होय मान तहां मानत महानसुख, अपमान होय तहां मृत्यु के समान है।
मानके गुमान आप महाराज मान रहे, होत अपमान मूढ़ हरै दशों प्रान है॥
मानही की लाज जग सहत अनेक दुख, अपमान होत धरे नरक निदान है।
ऐसे मान अपमान दोऊ ही कुभाव तज, गनत समान साधु रहै सावधान है॥१॥
सुनरे सयाने नर कहा करै घरघर, तेरो जो शरीरघर घरी ज्यों तरतु है।
छिन छिन छीजै आय जल जैसे घरी जाय, ताहू को इलाज कछु उरहू धरतु है॥
आदि जे सहे हैं ते तो याद कछु नाहि तोहि, आगे कहो कहा गति काहे उछरतु है।
घरीएक देख्योख्यालघरीकी कहाँहै चाल, घरीघरी घरियाल शोरयोंकरतुहै॥२॥(भैया)

गद्य-सभ्यगण ! यह संसार असार है। इसका वार है न पार है। यहां सदा मौतका गर्म बाज़ार है इसी लिये समझलीजिये, मनमें परखलीजिये। जो इसमें जीउलझाते हैं, मनुष्य आयुको बेकार गँवातेहैं, पीछे पछतातेहैं। हाथ मलकर रहजाते और अंतमेंइस दुनियासे यूंहीहाथ पसारे चलेजातेहैं।

६५. यमक (Repetition of same words in different meanings)—वह शब्दालंकार है जिसमें एक या अधिक पदों, शब्दों, या मात्रा सहित अक्षरों की पुनरुक्ति हो परन्तु प्रत्येक दुहराये हुए शब्द के अर्थ में भेद हो।

दोहा-अर्थ पलट आवत बहुरि, जहां वर्ण पद पाद।
यमक ताहि को कहत हैं, अन्त मध्य अरु आदि॥

जैसे-१. वेद भाव-सब त्याग कर, वेद ब्रह्म को रूप।
वेद मांहि सब खोज है, जो वेदे चिद्रूप॥ (भैया)

२. हरी जड़न को घात जड़, हरी तोर मति कौन।
हरी भजो ममता तजो, हरी रीति सुख हीन॥ (भैया)

३. भजन कह्यो तातें भज्यो, भज्यो न एकहु बार।
दूर भजन जातें कह्यो, सो तू भज्यो गँवार॥

अर्थ-१. वेद अर्थात् स्त्री पुं नपुंसक लिंग भाव सब त्याग कर ब्रह्म के स्वरूप को वेद अर्थात् जान। जो कोई ब्रह्म को वेदता अर्थात् जानता है उसे वेद अर्थात् भगवत् वाणी में सब का खोज मिल जाता है।

२. हे जड़ बुद्धि! तू हरी जड़ों को खाता है, तेरी बुद्धि किसनेछीन ली है? भगवत् का भजन कर और ममता को छोड़। सुख हीने की यही हरी भरी उत्तम रीति है।

३ भगवत् भजन करने को तुझसे कहा तब तो तू भागा अर्थात् भजन करने से विमुख हुआ और एक बार भी भजन नहीं किया और जब दूर भागने को कहा तो हे गँवार तू भगवद्भजन में लग गया।

नोट-पाद, पद, अक्षर की, आदिगत, मध्यगत, और अन्तगत की, और संयुक्त, असंयुक्त की अपेक्षा से संस्कृत में यह अलंकार १८ प्रकार से प्रयुक्त होता है।

६६. वक्रोक्ति (Equivocation, an Evasive or Ambiguous utterance)—वह शब्दालंकार है जिस में वक्ता श्रवण करते ही श्रोता वाक्य के किसी एक या अधिक शब्दों के अर्थ को शब्द भंग करके या अभंग ही से बदलकर वक्ता के अभिप्राय को सर्वथा बदल दे।

(१) भंगपद वक्रोक्ति या सभंग श्लेष वक्रोक्ति—जिस वक्रोक्ति में शब्द भंग करके अर्थ बदल किया जाय। जैसे—

१. किसी पुरुष ने अपनी स्त्री से बड़े प्रेम के साथ कहा-प्रिये! तुम बड़ी "गौरवशालिनी" हो अर्थात् गौरवयुक्त प्रभावशालिनी प्रतिष्ठा योग्य हो। उत्तर में स्त्री ने तुरन्त शब्द भंग करके (गो+अवशा+अलिनी=गाय, वशरहित, भौंरी) कहा, प्राणनाथ! मैं न तो गो, न अवशा और न अलिनी हूँ अर्थात् न मैं गऊ हूँ, न आपकी आज्ञा से बाहर हूं और न भौंरा नामक कीट हूं। आप ऐसे वचन मुझ से क्यों कहते हैं!

२. किसी ने कहा "मयूर (मोर) नाच रहा है"। सुनने वाले ने पद भंग करके (मयु+उर=यक्ष+हृदय) कहा "मयु उर अर्थात् यक्ष का हृदय, भला कैसे नाच रहा है"। उत्तर में वक्ता ने कहा "नहीं मैं तो कलापी (मोर) को कहता हूं कि नाच रहा है"। तब पद भंग करके (क+लापी=सुख+आलाप करने वाला) श्रोता ने फिर कहा "महाशय जी! यहां क लापी अर्थात् सुख संबन्धी बात चीत करने वाला कौन है जो नाचरहा है?"

(२) अभंग पद वक्रोक्ति या अभंग श्लेष वक्रोक्ति—जिस वक्रोक्ति में शब्द भंग किये बिना ही अर्थ बदलकर वक्ता के अभिप्राय में परिवर्तन कर दिया जाय। जैसे--

(५) अन्त्यानुप्रास (Final Alliteration)—जिस अनुप्रास में १. किसी छन्द के सर्व पादों के अन्त में, २. या दो सम और दो विषमपादों के अंत में, ३. या केवल दो समपादों में, ४. या केवल दो विषमपादों में, ५. या दो दो समविषम सम-विषम पादों में, ६. अथवा गद्य या पद्यमें नियम रहित किनहीं दो या अधिक पदों के पदान्त में एक एक या अधिक २ स्वर-व्यंजनों की आवृत्ति हो। जैसे—

१. ऐ मूढ़ अचेतन, कछुइक चेतो, आखिर जग में मरना है।
नर देही पाई, पूर्व कमाई, तिससों भी फिर टरना है॥
क्यों धर्म बिसारो, पाप चितारो, इन बातन क्या तरना है।
जो भूप कहाये, हुकुम चलाये, तौ भी क्या ले करना है॥

२. जिहि सुमरत सिधि होय, गण नायक करि वर वदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धिराशि शुभ गुण सदन॥

३. देह सनेह कहा करे, देह मरन को हेत।
उत्तम नर भव पाय के, मूढ़ अचेतन चेत॥

४. निरावरण निर्दोष, वन्दों श्रीपरमात्म पद।
वांछितार्थ सुख पोष, विघन हरन मंगल करन॥

५. मोह मगन संसार विषयसुख में रहै। करे न आप सम्हार धनादिक संगूहै॥
जाने यह थिर वास नाश नहिं होयगो। पाके मानुष जन्म अकारथ खोयगो॥

६. जहां होय मान तहां मानत महानसुख, अपमान होय तहां मृत्यु के समान है।
मानके गुमान आप महाराज मान रहे, होत अपमान मूढ़ हरै दशों प्रान है॥
मानही की लाज जग सहत अनेक दुख, अपमान होत धरे नरक निदान है।
ऐसे मान अपमान दोऊ ही कुभाव तज, गनत समान साधु रहै सावधान है॥१॥
सुनरे सयाने नर कहा करै घरघर, तेरो जो शरीरघर घरी ज्यों तरतु है।
छिन छिन छीजै आय जल जैसे घरी जाय, ताहू को इलाज कछु उरहू धरतु है॥
आदि जे सहे हैं ते तो याद कछु नाहि तोहि, आगे कहो कहा गति काहे उछरतु है।
घरीएक देख्योख्यालघरीकी कहांहै चाल, घरीघरी घरियाल शोरयोंकरतुहै॥२॥(भैया)

गद्य-सभ्यगण ! यह संसार असार है। इसका वार है न पार है। यहां सदा मौतका गर्म बाज़ार है इसी लिये समझलीजिये, मनमें परखलीजिये। जो इसमें जीउलझाते हैं, मनुष्य आयुको बेकार गँवातेहैं, पीछे पछताते हैं। हाथ मलकर रहजाते और अंतमेंइस दुनियासे यूंहीहाथ पसारे चलेजातेहैं।

६५. यमक (Repetition of same words in different meanings)—वह शब्दालंकार है जिसमें एक या अधिक पदों, शब्दों, या मात्रा सहित अक्षरों की पुनरुक्ति हो परन्तु प्रत्येक दुहराये हुए शब्द के अर्थ में भेद हो।

दोहा-अर्थ पलट आवत बहुरि, जहां वर्ण पद पांद।
यमक ताहि को कहत हैं, अन्त मध्य अरु आदि॥

जैसे-१. वेद भाव सब त्याग कर, वेद ब्रह्म को रूप।
वेद मांहि सब खोज है, जो वेदे चिद्रूप॥ (भैया)

२. हरी जड़न को खात जड़, हरी तोर मति कौन।
हरी भजो ममता तजो, हरी रीति सुख हौन॥ (भैया)

३. भजन कह्यो तातें भज्यो, भज्यो न एकहु बार।
दूर भजन जातें कह्यो, सो तू भज्यो गँवार॥

अर्थ–१. वेद अर्थात् स्त्री पु नपुंसक लिंग भाव सब त्याग कर ब्रह्म के स्वरूप को वेद अर्थात् जान। जो कोई ब्रह्म को वेदता अर्थात् जानता है उसे वेद अर्थात् भगवत् वाणी में सब का खोज मिल जाता है।

२. हे जड़ बुद्धि! तू हरी जड़ों को खाता है, तेरी बुद्धि किसनेछीन ली है? भगवत् का भजन कर और ममता को छोड़। सुख होने की यही हरी भरी उत्तम रीति है।

३ भगवत् भजन करने को तुझसे कहा तब तो तू भागा अर्थात् भजन करने से विमुख हुआ और एक बार भी भजन नहीं किया और जब दूर भागने को कहा तो हे गँवार तू भगवद्भजन में लग गया।

नोट-पाद, पद, अक्षर की, आदिगत, मध्यगत, और अन्तगत की, और संयुक्त, असंयुक्त की अपेक्षा से संस्कृत में यह अलंकार १८ प्रकार से प्रयुक्त होता है।

६६. वक्रोक्ति (Equivocation, an Evasive or Ambiguous utterance)—यह शब्दालंकार है जिस में वाक्य श्रवण करते ही श्रोता वाक्य के किसी एक या अधिक शब्दों के अर्थ को शब्द भंग करके या अभंग ही से बदलकर वक्ता के अभिप्राय को सर्वथा बदल दे।

(१) भंगपद वक्रोक्ति या सभंग श्लेष वक्रोक्ति—जिस वक्रोक्ति में शब्द भंग करके अर्थ बदल किया जाय। जैसे—

१ किसी पुरुष ने अपनी स्त्री से बड़े प्रेम के साथ कहा–प्रिये! तुम बड़ी "गौरवशालिनी" हो अर्थात् गौरवयुक्त प्रभावशालिनी प्रतिष्ठा योग्य हो। उत्तर में स्त्री ने तुरन्त शब्द भंग करके (गौः+अवशा+अलिनी=गाय, वशरहित, भौंरी) कहा, प्राणनाथ! मैं न तो गौ, न अवशा और न अलिनी हूँ अर्थात् न मैं गऊ हूँ, न आपकी आज्ञा से बाहर हूं और न भौंरी नामक कीट हूं। आप ऐसे वचन मुझ से क्यों कहते हैं!

२. किसी ने कहा "मयूर (मोर) नाच रहा है"। सुनने वाले ने पद भंग करके (मयु+उर=यक्ष+हृदय) कहा "मयु उर अर्थात् यक्ष का हृदय, भला कैसे नाच रहा है"। उत्तर में वक्ता ने कहा "नहीं मैं तो कलापी (मोर) को कहता हूं कि नाच रहा है"। तब पद भंग करके (क+लापी=सुख+आलाप करने वाला) श्रोता ने फिर कहा "महाशय जी! यहां कलापी अर्थात् सुख संबन्धी बात चीत करने वाला कौन है जो नाचरहा है?"

(२) अभंग पद वक्रोक्ति या अभंग श्लेष वक्रोक्ति—जिस वक्रोक्ति में शब्द भंग किये बिना ही अर्थ बदलकर वक्ता के अभिप्राय में परिवर्तन कर दिया जाय।

१. विजया ने अपनी सहेली गौरी से हास्य में पूछा, "बहिन ! सच बताओ तुम्हारे पति का क्या नाम है?" गौरी ने उत्तर दिया 'शिव है'। विजया ने शिव का अर्थ बदल कर कहा "क्या तुम्हारा पति शृगाल है !" गौरी ने उत्तर दिया 'नहीं बहिन स्थाणुः (शंकर) है'। सुनकर विजया ने फिर 'स्थाणुः' का अर्थ पलट कर कहा "क्या कीलक अर्थात् ठुंठ है ?" गौरी ने फिर उत्तर दिया 'नहीं बहिन ! पशुस्वामी (पशुपति = महादेव) है।" यह सुनतेही विजया फिर अर्थ फेरकर बोली "अच्छा तो क्या पशुओं का रखवाला ग्वालिया है ?"

२. दोहा—को तुम ? हरि प्यारी ! कहा, मृगपति को पुर काम !
श्याम सलोनी ! श्यामकपि, क्यों न डरैं तव वाम !!

अर्थ--किसी ने राधिका से पूछा 'तुम कौन हो ?' उत्तर दिया "मैं हरि प्यारी (कृष्ण की प्यारी) हूँ !"। पूछने वाले ने 'हरि' का अर्थ बदल कर हास्य से कहा, हरि अर्थात् "मृगपति (सिंह) का पुर में क्या काम !" तब राधिका ने फिर बताया कि 'श्याम सलोनी (कृष्ण की प्यारी) हूँ।' पृच्छक ने फिर हास्य से कहा, "क्या श्याम हरि की अर्थात् श्याम कपिकी (काले बन्दरकी) प्यारी (लंगूरी) हो,तब तो स्त्रियां तुम से क्यों न डरें ! (हरि = कृष्ण, सिंह वानर । श्याम = कृष्ण, काला)।

६७. भाषासमक (Mixed Language)--वह शब्दालंकार है जहां काव्य रचना दो या अधिक भाषाओं में मिली जुली ऐसी उत्तम रीतिसे की गई हो जिससे उसके पदों और वाक्यों में सुन्दरता और मनोहरता आगई हो।

जैसे-१. यदा मुश्तरी कर्कटे वा कमाने। यदाचश्मखोरा दशम आस्थाने ॥
तदा ज्योतिषी क्या लिखेगा पढ़ेगा। हुआ बालका बादशाही करेगा ॥

(मुश्तरी = बृहस्पति, कर्कटे = कर्क राशि में; कमाने = धनराशि में; चश्मखोरा = शुक्र; दशम आस्थाने = दशवें स्थान में)

२. ओ माइ डीयर मम वाक्य हीयर, नजाओ प्यारे हियर ऐंड देअर।
दो बात करलें मन अपना भरलें, नशीनेद ईंजा लेलो यह चेअर ॥

अर्थ—अय मेरे प्यारे ! मेरे वचन सुन। प्यारे, इधर उधर न जाओ। आओ कुछ बात चीत करके मन प्रसन्न कर लें। इस स्थान पर बैठो, यह कुर्सी ले लो।

६८. श्लेष (Pun or Paronomasia)--श्लेष वह शब्दालंकार है जहां शब्द बदले बिना या भंग किये बिना ही एक या अधिक शब्दों के दो या अधिक अर्थ लग सकें, जो या तो प्रत्येक यथार्थ और उपयोगी हो अथवा उनमें कोई अर्थाभास और अयुक्त हो और कोई यथार्थ हो। जैसे—

१. सतगुरु ने कीन्हों कहा ? को चन्दा की सैन ?
धामद्वार को रहत है ? 'तारे' सुन मम बैन ॥ (भैया)

२. जैसे प्रगट 'पतंग' के, दीप माहिं परकाश।
तैसे ज्ञान उद्योत सों, होत तिमिर को नाश ॥ (भैया)

पहिले दोहे में प्रथम तीन चरणों में ३ प्रश्न हैं और चौथे चरण में तीनों प्रश्नों का एक ही उत्तर 'तारे' पद है। इस 'तारे' पद के तीन अर्थ १. तिराये, २. तारागण, और ३. ताले (अर्थात् द्वार पर लगाने का यंत्रविशेष) हैं जो यथाक्रम तीनों प्रश्नों के उत्तर में उपयोगी हैं। दूसरे दोहे में पतङ्ग शब्द के दो अर्थ १ पतङ्ग कीट और २. सूर्य हैं। इनमें से पहिला अर्थ अनुपयुक्त है और दूसरा उपयोगी है।

६९. प्रहेलिका (A Riddle)—यह शब्दालंकार है जिसमें कोई गूढ़ प्रश्न किया गया हो और प्रश्नके अन्तर्गत ही गूढ़रूप से उत्तर भी विद्यमान हो। जैसे—

कर बोले कर ही सुने श्रवण सुने नहिं तेहि।
हे प्यारी नारी कहो कौन वस्तु है यहि॥
उत्तर—नारी = नाड़ी

नोट १—हिन्दी भाषा में कहीं कहीं ड़ के स्थान में र का भी प्रयोग होता है।

नोट २—प्रहेलिका के अन्यान्य भी अनेक भेद हैं जिनमें से कई शब्दालङ्कार के और कई अर्थालंकार और कई उभयालंकार के भेद हैं।

७०. चित्र (Pictorial)—यह शब्दालङ्कार है जिसमें शब्दों का प्रयोग ऐसी रीति से किया गया हो जिससे उन शब्दों के अक्षरों से किसी न किसी आकार का चित्र बन सके अथवा ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिन में किसी न किसी प्रकार की विचित्रता पाई जाय। हो विचित्रता वर्ण ते, या हो चित्राकार।
चित्रकाव्य तिहि कहत हैं, ताके भेद अपार॥

(१) मात्रा रहित छप्पय छन्द—सकल करम खल दलन कमठ सठ पवन कनक नग।
धवल परमपद रमन जगत जन अमल कमल खग॥
परमत जलधर पवन सजल घन सम तन सम कर।
पर अघ रज हर जलद सकल जन नत भय भय हर॥
यम दलन नरक पद क्षयकरन अगम अतट भवजल तरन।
वर सबल मदन वन हर दहन, जय जय परम अभय करन॥ (बनारसी)

(२) एकाक्षरी संस्कृत अनुष्टुप् छन्द—ककाकु कंक केकांक, केकि कोकैककुः ककः।
ककको कःकाककाक,कर्काकुकुककांककुः॥(पारमट)

अर्थ—(ककाकु कंक) सुख को ध्वनि करने वाले जल पक्षी, (केकांक केकि कोक) मयूरों की वाणी से अङ्कित मयूर और चक्रवाकों का, (एक कुः ककः कक कोकः) कक कक शब्द करने वाले चकवों का जो अद्वितीय सुख स्थल है, तथा (काक काक कर्कांकु कुक कांक कुः) काकों को आह्लादन करने वाला ब्रह्मा जिस की गोद में है उस विष्णु का सुरम्य स्थान है। (इस श्लोक में समुद्र का वर्णन है)।

(३) एकाक्षरी संस्कृत स्रग्धरा छन्द—

तातां तातो ततेतां ततति तत तता ताति ताती ततताऽ।
ततातीतां तताती ततति ततितता तत्त तत्ते तितति॥
तांतातीता तितातो ततु तिततितां ताऽस्ति तात् तितत्ते।
तांते तितो तुताता ततुतति तुतितुत्तातितां ॥

१. विजया ने अपनी बहनेली गौरी से हास्य में पूछा, "बहिन ! सच बताओ, पति का क्या नाम है?" गौरी ने उत्तर दिया 'शिव है'। विजया ने शिव का अर्थ बदल कर कहा "क्या तुम्हारा पति शृगाल है !" गौरी ने उत्तर दिया 'नहीं स्थाणुः (शंकर) है'। सुनकर विजया ने फिर 'स्थाणुः' का अर्थ पलट कर कहा "क्या कीलक अर्थात् ठुंठ है ?" गौरी ने फिर उत्तर दिया 'नहीं बहिन पशुस्वामी (पशुपति = महादेव) है।" यह सुनतेही विजया फिर अर्थ फेरकर बोली, "अच्छा तो क्या पशुओं का रखवाला ग्वालिया है ?"

२. दोहा—को तुम ? हरि प्यारी ! कहा, मृगपति को पुर काम !

श्याम सलोनी ! श्यामकपि, क्यों न डरें तब धाम !!

अर्थ--किसी ने राधिका से पूछा 'तुम कौन हो ?' उत्तर दिया "मैं हरि प्यारी (कृष्ण की प्यारी) हूँ !"। पूछने वाले ने 'हरि' का अर्थ बदल कर हास्य से कहा हरि अर्थात् "मृगपति (सिंह) का पुर में क्या काम !" तब राधिका ने बताया कि 'श्याम सलोनी (कृष्ण की प्यारी) हूँ।' पृच्छक ने फिर कहा, "क्या श्याम हरि की अर्थात् श्याम कपिकी (काले बन्दरकी) हो,तब तो स्त्रियां तुम से क्यों न डरें ! (हरि = कृष्ण, सिंह वा काला)।

६७. भाषासमक (Mixed Language)--वह शब्दालंक दो या अधिक भाषाओं में मिली जुली ऐसी उत्तम रीति और वाक्यों में सुन्दरता और मनोहरता आगई हो।

जैसे-१. यदा मुश्तरी कर्कटे वा कमाने। यदा

तदा ज्योतिषी क्या लिखेगा पढ़ेगा।

(मुश्तरी = बृहस्पति, कर्कटे =

शुक्र; दशम आस्थाने = दशवें स्था

२. ओ माइ डीयर मम

दो बात करलें मन

अर्थ—अय मेरे प्यारे !

बात चीत करके मन प्रसन्न कर ले

६८. श्लेष (Pun or Paronomasia

बिना या भंग किये बिना ही एक या अधि

या तो प्रत्येक ... ही हो अथवा

कोई यथार्थ हो।

१. सतगुरु ... चन्दा की स

धामहार ... मम बैन ॥

२. जैसे प्रगट ... परकाश।

तैसे ज्ञान ... नाश ॥

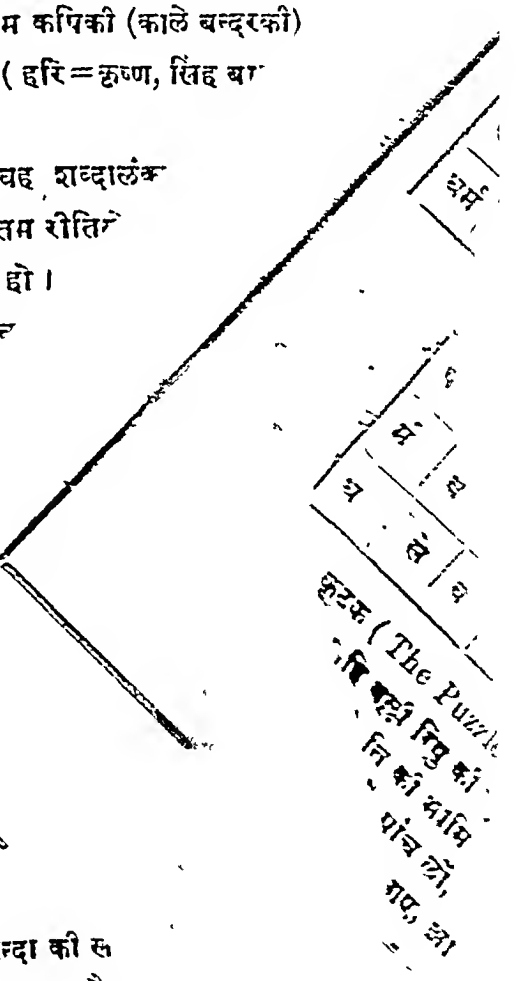

अर्थ १—अहि वल्ली रिपु=नागवेल का शत्रु=हिम या हिमाचल,
हिमाचल की सुता=पार्वती,
पार्वती के पति का हार=शिवजी का हार=सर्प,
सर्प का अरिपति=पक्षिपति=विष्णु भगवान,
विष्णु भगवान की भामिनी=लक्ष्मी, लक्ष्मी सदा बसे तुमद्वार, अर्थात्
आप के द्वार पर लक्ष्मी सदा बसे, ऐसा आशीर्वाद वचन है।
२—मेष राशि से पांचवीं सिंह राशि है, सिंह का भक्षण मास है। मास॰
अर्थात् महीने बारह बीत गये पर घनश्याम अभी तक नहीं आये।

(१२) विचित्र विजया छन्द दोहा युक्त (मुनिराज स्तुतिः)—

१ काम मदाष्टक जीते जती, जिके धीमत को मत जोवत तिष्टे।
२ संत बडद सतवंत षडद, नय तत्तहिं सद्दहे निष्टित सिष्टे॥
४ काय जिके जलकाय की जानह, काय निजेव जिवायक निष्टे।
८ दारिद कर्म हरे दुखदाय, हिये में यमी रमि होय महिष्टे॥
श्री सीतल जिनवर महा, दायक इष्ट रसाल।
वृन्दावन मन बचन तन, नावत तिन पद भाल॥ (वृन्दावन)

नोट—यह छन्द ऐसी चतुराई से रचा गया है कि इसके पहिले चारों पाद में से कहीं से कोईएक अक्षर यदि कोई पुरुष अपने मन में ले लेवे तो वह दोहे की पहिली पंक्ति की सहायता से निम्न रीति से बताया जा सकता है—

मन में अक्षर लेने वाले पुरुषसे पूछा जाय कि वह अक्षर किस किस पाद में है। जिस जिस पाद में लिये हुये अक्षर को वह पुरुष बतावे उन पादों पर रक्खे हुये अङ्कों को जोड़ लो। जितना जोड़ आवे उतनेवां अक्षर दोहे की पहिली पंक्ति में से पहिले अक्षर से गिन कर बतादो। निःसन्देह मनमें लिया हुआ यही अक्षर होगा। यह ध्यान रहे कि उत्तर में मात्रा के अन्तर को अन्तर न माना जायगा। उत्तर दाता को चाहिये कि दोहा स्वयं कण्ठ करले। अक्षर लेने वाले के साम्हने लिख कर न रक्खे। केवल विजया छन्द ही लिखा हुआ उसके सन्मुख रक्खे।

(१३) अन्तर्लापिका (The Hidden Inside)—जिसका उत्तर छन्द के अन्तर्गत हो। छप्पय छन्द—

पंकज बिनु नहिं रुचिर, कहा कोकिल महँ सोहे ?
प्रति हरि कहँ हरि कहा, करै जिन जऊँ सुकोहे ?
कालादिक नय कहा, पार्श्वजिन दीक्षातरु कहु ?
समरस गुन जग कहा, काव्य नव भेद कौन लहु ?
बश लोम मिलन इच्छै कहा, किहिरत वृषधर शरम भनि ?
सुनि उत्तर वृन्दावन कहत, पंचवरन यह 'सरस घनि' ॥ (वृन्दावन)

नोट—इस छन्दमें कियेहुये १० प्रश्नोंके क्रमसे उत्तर अंतके ५ अक्षरों 'सरस घनि' से सर, रस, घघ, घनि, निघ, धन, वर, रस, सरसघनि, और निघवरस

(१४) बहिर्लापिका (The Hidden outside)—जिसका उत्तर छन्द में न हो। मनहर छन्द (कवित्त इकतीसा)--

भापे कहा सज्जनको कौन शम्भुवाहनहै, काको सुखहोत काकी माला शिवधारी है?
कहा गज बन्धन छबीले दग काके अति, कौन हर पुत्र सीपसुत को विचारी है?
शोभाको सुनामका है कृष्णनख धारो कहा, सिन्धुसे मिलत कौन कहा अनियारोहै?
उत्तरके शब्दन में आदि अन्त छोड़ दीजे, मध्य लीजे सो हिये मनोरथ हमारो है॥

नोट—इस छन्द के पहिले तीन पाद में १२ प्रश्न हैं जिन के उत्तर क्रम से सयाना, वरद, सुकृत, कपाल, साँकल, हरिणी, गनेश, मुकता, पानिय, पहाड़, सरिता, नयन हैं। छन्द के चौथे पाद के संकेतानुसार उत्तर के इन १२ शब्दों के मध्याक्षरों से 'यार कृपा करि नेक निहारिये', यह वाक्य बनता है। यही अभीष्ट उत्तर है।

(१५) लोम विलोम (The Two faced in different senses)--मदिरा छन्द (सवैया २२ अक्षरी)—

सैनन माधव ज्यों सर के सब रेस सुदेसु सुवेसु सबै।
नैनवकी तजिजी तरुनी रुचिचीर सवे निमिकाल फलै॥
तैन सुनी जस भीर भरी धरि धीर धरी तसु कोन बहै।
मैन मनी गुरु चाल चलै सुभसो बनमें सरसी बलसै॥

इस छन्द के चारों पादों का विलोम (उलटा मदिरा छन्द) यह है:--

सल बसी रस में नव सोम सुलैचल चारु गुनी मन मै।
है बन को सुतरी धर धीरि धरी भरभी सजनी सुन तै॥
लै फल कामिनि वेस रची चिरु नीरु तजी चित की बनतै।
बैस सुवेसु सुदेसु सरे बस के रस ज्यों बब मान नसै॥

(१६) गतागत (The Two faced coinciding to each other)—जिसमें प्रत्येक पाद उलट कर भी पढ़ने से वही पाद बनता है:—

१.अनुष्टुपश्लोकछन्द-आपा धान नधा पाआ। चार मार रमा रचा॥
राधा सील लसी धारा। सादसाम मसादसा॥ (भैया)

२. मदिरा छन्द—मालम सोह सजेवन बीन नवीन वजे सहसोमलमा।
मार लतान बनावत सारि रिसात वनावन ताल रमा॥
मान वही रहि मोरद मोद दमोदर मोहि रही वन मा।
माल बनी बल केशवदास सदा वश केलवनी बलमा॥

(१७) सिंहावलोकन (Backside Glance)—जिसमें प्रत्येक पादान्त या पाद के विश्रामान्त शब्द को प्रत्येक अगले अगले पाद या पाद के विश्राम से अगले भाग के प्रारम्भ में दुहराया जाय--यथा

छप्पय छन्द—सुनहु हंस यह सीख, सीख मानो सदगुर की।
गुरुकी आन न लोपि, लोपि मिथ्या मति उर की॥
उर की समता गहौ, गहौ आतम अनुभव सुख।
सुख स्वरूप थिर रहै, रहै जगमें उदास रुख॥

रुच करौ नहीं तुम विषय पर, पर तजि परमातम मुनहु।
मुनहु न अजीव जडु माहिं निज, निज आतम वर्नन सुनहु ॥ (द्यानत)

(१८) पर्वतबद्ध सवैया (३२ मात्रा)—

या मन के मान हरन को भैया, तू निहचै निज जानि दया।
जो हित तोहि विचारत पयो नहिं, रागद्वेष निवारि नया॥
मर्मादिक भाव विछेद करो ज्यों, तोहि लोपन प्रकाश भया।
या मन मानह कौन भलो न न, लोभ न कोह न मान मया॥ (भैया)

(१९) चक्रबद्ध दोहा—करमन सों कर युद्ध तू, करले ज्ञान कमान।
तान स्वबल सों परम तू, मारो मनमथ जान॥ (भैया)

(२०) धनुषबद्ध दोहा—परम धरम अवधारि तू, पर संगति कर दूर।
ज्यों प्रगटे परमातमा, सुख सम्पति रहे पूर॥ (भैया)

(२१) हारबद्ध, अथवा विंशतिदल कमलबद्ध दोहा—

आप आप थप जाप जप, तप तप खप वप पाप।
काप कोप रिप लोप जिप, दिप दिप अप टप ताप॥ (भैया)

(२२) सर्वतोभद्रगति षोडशदल कमलबद्ध आभीर छन्द—

रामदेव चित चाहि, सामदेव नित गाहि।
कामदेव मित पाहि, ताम देव हित ठाहि॥ (भैया)

(२३) द्वादशदल कमलबंद्ध तथा गोमूत्रिकाबद्ध चोपाई १५ मात्रा—
पाहि पाहि मोहि गहि गहि बाँहि। तोहि गाँहि रहि रहि महि माँहि॥

(२४) चमरबद्ध दोहा—अरि परिहरि अरि हेरि हरि, घेरि घेरि अरि टारि।
करिकरि थिरथिर धारिधरि, फिरिफिरि तरितरि तारि॥ (भैया)

(२५) घटाईबद्ध, नागबद्ध, कपाटबद्ध, अश्वगतिबद्ध, नागबद्ध बहिर्लापिका, इत्यादि अनेकानेक भेद हैं। (भैया)॥

८, अर्थालङ्कार (नं० ५१)

(A FIGURE OF SPEECH IN SENSE.)

७१. उपमालङ्कार (Simile)—जहां किसी वाक्य में किसी एक वस्तु की तुलना किसी अन्य वस्तु के साथ की जाय। जैसे—कमल समान सुन्दर नेत्रों वाली यह बालिकायें कैसे रसीले गीत गारही हैं।

७२ उपमाङ्ग (Component Parts of a Simile)—जिन अङ्गों से उपमालङ्कार की पूर्ति होती है वे अङ्ग निम्नलिखित ४ हैं:—

(१) उपमेय-उपमालङ्कार में जिस वस्तुको उपमा दी जाय। जैसे—ऊपर के उदाहरण में 'नेत्र'।

(२) उपमान—उपमालंकार में जिस वस्तुके साथ उपमा दी जाय। जैसे—ऊपर के उदाहरण में 'कमल'।

(३) धर्म—उपमालंकार में उपमेय और उपमान दोनों में जिस गुण की समानता हो। जैसे--ऊपर दिये उदाहरण में 'सुन्दरता'।

(४) वाचक—उपमालङ्कार में जो शब्द तुलनाबोधक हो। जैसे--ऊपर दिये उदाहरण में 'समान'।

७३. पूर्णोपमालंकार (Complete Simile)--जिस उपमालंकार में उपमा के चारों अङ्ग विद्यमान हों। जैसे--कमलसमान सुन्दर नेत्र।

७४. लुप्तोपमालंकार (Elliptical Simile)—जिस उपमालंकार में उपमा के चार अङ्गों में से किसी एक, दो, या तीन का लोप हो। जैसे--(१) कमलसमान नेत्र (धर्मलुप्तोपमा), (२) कमलनयनी (वाचक धर्म उभय-लुप्तोपमा), (३) इस बालिका के मुखरूपी सरोवर में यह दो प्रफुल्लित 'कमल' कैसे 'सुन्दर' दीख पड़ते हैं (वाचक उपमेय उभय-लुप्तोपमा), (४) इसके मुख सरोवर में यह दो कमल हैं (वाचक, धर्म, उपमेय-त्रिलुप्तोपमा), (५) मृगनयनी (वाचक, धर्म, उपमानत्रिलुप्तोपमा), इत्यादि। इसके ८ भेद हैं।

७५. उपमानोपमेयालंकार
उपमेयोपमानालंकार
अन्योन्योपमालंकार } (Reciprocal Simile)--जिस उपमालंकार में दो वस्तुओं में परस्पर की उपमा हो। जैसे—जिस पुरुषका मन शरीर की समान और शरीर मन की समान निर्विकार है वही महात्मा है।

७६. अनन्वयोपमालंकार (Self Simile)—जिस उपमालंकार में उपमेय और उपमान दोनों एक ही हों। जैसे--आपके समान सर्वगुण सम्पन्न आप ही हैं।

७७. समुच्चयोपमालंकार (Colective Simile)--जिस उपमालंकार में उपमेय कई वस्तु हों और उपमान एक वस्तु हो। जैसे--इस बालिका के हस्त, पाद, मुख और नेत्र सब ही कमल जैसे सुन्दर और कोमल हैं।

७८. मालोपमालङ्कार (Garland Simile)--जिस उपमालंकार में उपमेय और धर्म एक और उपमान कई वस्तुहों। जैसे—इस बालिकाका मुख कमलसमतथा चन्द्रसम सुन्दर है।

७९. सञ्चयोपमालङ्कार (Collection of Simile)—जिस उपमालङ्कार में उपमेय एक वस्तु हो और उपमान तथा धर्म अलग २ कई हों। जैसे--

१. इस बालिका का मुख कमलसम सरस और चन्द्रसम सुन्दर है।

२. यह मुनि भूमिसम क्षमावान, आकाशसम अलेपी, जलसमनिर्मल, सूर्य्यसम तेजस्वी, चन्द्रसम आनन्ददायक और कल्पवृक्षसम मनवांच्छित फलदायक हैं।

८०. रशनोपमालंकार (Girdle-Simile or Link of Similes)—जिस उपमालंकार में शृङ्खलाबद्ध कई उपमाओंका ऐसा मेल हो कि पूर्व पूर्व की उपमाका उपमान अंत तक अगली अगली उपमा का उपमेय बनता चला जाय। जैसे--

काव्यवर जग सोहै ! कैसो सोहै काव्यवर ? जैसो मानसर सोहै सरन को अधिराज ! कैसो सोहै मानसर ? कहो कवि भानु मोसों, जैसो सोहै द्विजराज, कैसो सोहै द्विजराज ? मदन मुकुर जैसो, मदन मुकुर कैसो ? सीताजू के मुख पर, जैसी रही छबि छाज। सीताजू को मुख कैसो ? सुख को सदन जैसो, सुख को सदन कैसो ? जैसो शुभ रामराज॥

८१. प्रतीपोपमालंकार (Converse Simile)--जिस उपमालङ्कार में उपमेय को उपमान और उपमान को उपमेय का रूप दिया गया हो। जैसे ये कमल इस बालिका के नेत्र समान प्रफुल्लित हैं।

८२. ललितोपमालंकार (Comparative Simile)--जिस उपमालङ्कार में उपमेय और उपमान में से किसी एक की दूसरे से हीनता या उत्कृष्टता अथवा अयोग्यता दिखाई जाय। जैसे--इस कोमलांगी बालिका के रूप की सुन्दरता देवकन्याओं के रूप से कहीं अधिक है। देवकन्यायें भी इसके रूप और गुणोंको देख देखकर लज्जित होती हैं। इस के मुख की सी अनुपम सुन्दरता चन्द्रमामें कहां है। इसके सुन्दर ओष्ठों की लाली की समानता विद्रुम नहीं कर सकता।

८३. प्रतिवस्तूपमालंकार (Typical Simile)--जिस उपमालङ्कार में उपमेय (वस्तु) और उपमान (प्रति वस्तु) पृथक् पृथक् स्वतंत्र वाक्यों में हों और दोनों में एक साधारण धर्म की समानता हो। जैसे--१ इसकी संतान में केवल एक यही पुत्र कुलदीपक जन्मा है : केतकी के सर्व ही पत्र सुगन्धित नहीं होते, कोई एकाध ही होता है। (यहां दो अलग अलग स्वतंत्र वाक्यों में पिता को केतकी से, संतान को पत्रों से और एक गुणी पुत्र को सुगन्धित पत्र से उपमा दी गई है)। २ दुर्जन के कटुवचन सज्जन के चित्तको दुखित नहीं करते : जल पर चलाया हुआ शस्त्र जल को क्या हानि पहुँचाताहै। (यहां कटु वचन को शस्त्र की और सज्जन के चित्त को जल की उपमा दी गई है)।

८४. सन्देहोपमालंकार (Doubtful Simile)--जिस उपमालंकार में उपमेय और उपमान में यह सन्देह उत्पन्न होने का भाव प्रकट हो कि यह पदार्थ इन दोनों में कौन वस्तु है। जैसे--यह मुख है कि चन्द्रमा।

८५. उत्प्रेक्षालंकार (Poetical Fancy) -जिस अलङ्कार में उपमेय की उपमान के रूप में बलपूर्वक सयुक्तिक सम्भावना की गई हो अर्थात् उपमेय का स्पष्ट विद्यमान अर्थ न लेकर उसी के समान कोई अन्य कल्पित अर्थ ग्रहण किया गया हो। जैसे--(१) रात्रि का अन्धकार क्या है मानों चक्रवाकों की विरहाग्नि का धूम्र है जिसने सारे आकाश में फैल कर सूर्य को भी आच्छादित कर दिया है। (२) सूर्य के अस्त होते ही आकाश मानो अञ्जन बरसा रहा है। (३) यह अस्त होता हुआ सूर्य आप से भयभीत होकर ही अस्ताचल की शरण लेने के लिये भागा जारहा है। (४) इस समय काले काले बादलों से परिपूर्ण इस महा अँधेरी रात्रि में यह बिजली की कड़क और चमक क्या है मानो संसार को ग्रस कर किलकारी मार मार कर आनन्द से हँसने वाली राक्षसी के किलकार शब्द और दांतों की चमक है जो हमारे मन को दहला रही है। (५) उसके कटु वाक्य जले पर नमक का कार्य कर गये। (६) आपके चरणों की तुल्यता प्राप्त करने के लिये ही यह कमल एक टांग से खड़ा हुआ जल की सेवा कर रहा है। इत्यादि।

नोट १--इस अलंकारके वाचकचिह्न या सांकेतिकशब्द मानो, मनो, मनु, जनु आदिहैं।

नोट २--इस अलंकार के ६ भेद हैं--(१) वस्तूत्प्रेक्षा उक्तास्पदा, (२) वस्तूत्प्रेक्षा अनु

कास्पदा, (३) हेतूत्प्रेक्षा-सिद्धास्पदा, (४) हेतूत्प्रेक्षा-असिद्धास्पदा, (५) फलोत्प्रेक्षा-सिद्धास्पदा, (६) फलोत्प्रेक्षा-असिद्धास्पदा ।

नोट ३--उत्प्रेक्षालङ्कार में जहाँ उत्प्रेक्षासूचक शब्द 'मानो', 'जनु', 'जान पड़ता है', इत्यादि नहीं तो 'उसे गम्योत्प्रेक्षालङ्कार' कहते हैं।

उत्प्रेक्षा सम कल्पना, वस्तु हेतु फल लेखि ।
वस्तु द्विविधि उक्तास्पद, अनुक्तास्पद देखि ॥
हेतु रु फल सिद्धास्पद, असिद्धास्पद मानि ।
वाचक जहां न रहत है, गम्योत्प्रेक्षा जानि ॥

नोट ४--जिसमें अन्य वस्तु की कल्पना या सम्भावना की जाय उसे "सम्भाव्य" या आस्पद कहते हैं। जिसकी अन्य वस्तुमें कल्पना या सम्भावना की जाय उसे 'सम्भाव्यमान' कहते हैं।

८६. रूपक (Metaphor & Allegory)—जिस अलङ्कार में उपमेय और उपमान का साधर्म (रूप या गुण या दोनों की अपेक्षा) इस प्रकार से दिखाया गया हो कि जिससे उपमेय और उपमान का भेद ही दृष्टि से लुप्त या अप्रकट हो गया हो अर्थात् जहां सर्व प्रकार समानता या कुछ न्यूनाधिकता दिखाकर उपमेय को उपमान ही बना दिया गया हो। जैसे—(१) आप सचमच कल्पवृक्ष हैं कि कोई आपके पास से निराश नहीं लौटता। (२) यह मनुष्य विना दुम का बन्दर है। (३) यह मुखचन्द्र सर्व प्रकार निष्कलंक और रात्रि दिवश हर समय समान-सुन्दर और उदयरूप है। (४) इस संसाररूपी समुद्रमें इच्छारूपी वायु के झकोरों से अनेक कुचिन्तारूपी लहरें उठ उठ कर धर्मरूपी जिहाज़को कहींका कहीं बहाये लिये जाती हैं, जिसे अनेक रोग शोक दुःखादि रूपी बड़े बड़े कच्छ मच्छ टकरा टकरा कर डुबाना या चूरचूर कर देना चाहते हैं। इत्यादि।

नोट १-इस अलङ्कार के ६ भेद हैं—(१) तद्रूप-सम, (२) तद्रूपन्यून, (३) तद्रूपाधिक, (४) अभेदसम, (५) अभेदन्यून, (६) अभेदाधिक।

नोट २-किसी किसी की सम्मति में इस अलङ्कार के 'समस्त' और 'असमस्त', या 'साङ्ग' और 'निरङ्ग' यह दो भेद और इनके एकदेशविवर्ति, माला, परम्परित, इत्यादि उपभेद हैं।

नोट ३-उपमालङ्कार, उत्प्रेक्षालङ्कार और रूपकालङ्कार का अन्तर--

उपमालङ्कार में उपमेय और उपमान की भिन्नता प्रकट रूप से प्रतीत होती है। उत्प्रेक्षा में वह भिन्नता कुछ कम हो जाती है। और रूपक में वह मिट जाती है।

८७. अपह्नुति अलङ्कार (Concealment)—जहां समानता के आभास से किसी यथार्थ बात को दबाकर उसी के समान अन्य बात की कल्पना की जाय।

अपह्नुती सादृश्यते, यह वह नहिं यह मान।
व्योम न घन विरहनि विरह, अग्नि धूम इह जान॥

इस अलङ्कार के (१) शुद्ध, (२) हेतु, (३) पर्य्यस्त, (४) भ्राँति, (५) छेक, (६) कैतव, यह छह भेद हैं। इस अलङ्कार के वाचक चिह्न प्रायः न, नहीं, अथवा, किंवा, मिस, छल, इत्यादि हैं॥

८८. सन्देहालङ्कार (Doubt)--जहां समानता के आभास से किसी एक वस्तु को दूसरी वस्तु होने का सन्देह मानकर वाक्य को अलंकृत किया गया हो।

अलङ्कार सन्देह में, किधौं यहै कै भान।
वदन किधौं यह शीतकर, ठीक परत नहिं जान॥

८९. भ्रांति (Mistake)—जहां किसी एक वस्तु में उसी समान अन्य वस्तु का निश्चय होना मानकर वाक्य को अलङ्कृत किया गया हो।

जहां अन्य को अन्य में, भ्रांति भ्रांति सो जान।
तव मुख पंकज मान के, भौंरा भ्रमत नदान॥

९०. उल्लेख (Representation)—जहां वाक्य ऐसे भाव से अलङ्कृत किया गया हो कि एक ही वस्तु को अनेक जन अपने अपने विचारानुकूल अनेक प्रकार से देखें अथवा एक ही पुरुष अनेक गुणापेक्षा अनेक प्रकार देखे। जैसे—(१) हे राजन्! याचक तो आपको कल्पवृक्ष, स्त्री आपको कामदेव, और शत्रु आपको साक्षात् काल जानते हैं। (२) हे राजन्! आप बल में तो भीम, तीर चलाने में अर्जुन, दान में वरुण, तेज में सूर्य और वचनपटुता में साक्षात् बृहस्पति हैं।

९१. स्मरण (Rhetorical Recollection)--जहां किसी वस्तु का उस वस्तु की समान या उस से कोई सम्बन्ध रखने वाली अन्य वस्तु को देख सुनकर या कोई अन्य निमित्त मिलने पर स्मरण हो आने का भाव दिखाकर वाक्य को अलंकृत किया गया हो।

जैसे—१. प्राची दिश शशि देखि सुहाया। सिय मुख सरस याद सुधि आया॥
२. सघन कुंज छाया सुखद, शीतल मन्द समीर।
मन है जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर॥

९२. परिणाम (Commutation)--जहां उपमान से उपमेय की क्रिया कराकर वाक्य को अलंकृत किया गया हो।

उपमे की क्रिया करे, उपमा सो परिणाम।
लोचन कंज विशालतें, देखत देख्यो धाम॥

९३. आक्षेप (Hint)--जहां वाक्य में प्रतिषेध की उक्ति या प्रतीति, अथवा केमर्थ या आभास हो। जैसे--(१) जिसे नरक वास ही प्रिय है वह मनमानी हिंसा, कषाय और कुव्यसनों में रत रहे। (२) जो धनवान न तो कीर्ति के इच्छुक हैं और न दयाशील ही हैं वे धनदानुचर की समान निश्चित रूप से धन के केवल रखवारे हैं। (३) जब उसके महल में देवांगनाओं को लज्जित करने वाली एक पतिव्रता सुन्दर स्त्री है तो स्वर्गों की अभिलाषा किस अर्थ की। (४) तू मुझे वानर न समझ, मैं तेरा काल हूं। (५) आप मुझे अपना सेवक न जानें किन्तु जहां आपका पसीना गिरे वहां मैं अपना रुधिर बहाने वाला [illegible]

९४. दृष्टांत (Examplification)-जहां उपमेय और उपमान में किसी [illegible] समता बिम्बप्रतिबिम्ब भाव से दो या अधिक अलग २ वाक्यों द्वारा [illegible]

दोहा-जिय हिंसा जग में बुरी, हिंसा फल दुख देत ।
मकरी माँखी भच्यती, ताहि चिरी भखलेत ॥१॥
झूठ भलो नहिं जगत में, देखहु किन दृग जोय ।
झूंठी तूती बोलती, ताहिम रहै न कोय ॥२॥
बिन दीनों जे लेत हैं, ताहि लगै बहु पाप ।
चोरहि सूली देत हैं, देखहु जग संताप ॥३॥
परतिय अभिलाषा बुरी, होय दुःख बहु रूप ।
देखहु रावण आदि बहु, पड़े नरक के कूप ॥४॥
परिग्रह संग्रह ना भलो, परिग्रह दुख को मूल ।
माखी मधुको जोड़ती, देखै दुख के सूल ॥५॥
राग न कीजे जगतमें,राग किये दुख होय । रागहि वश कोयल पकर,पिंजरे डालें लोय ।६॥
नेह न कीजे आनसों,नेह किये दुखहोय । नेह सहित तिल पेलिये,डार यंत्रमें सोय ॥७(भैया)

जैसे ज्वर के जोर सों, भोजन की रुचि जाय ।
तैसे कुकरम के उदय, धर्म वचन न सुहाय ॥१॥
जैसे पवन झकोर तें, जलमें उठें तरङ्ग ।
त्यों मनसा चंचल भई, परिग्रह के परसंग ॥२॥
ज्यों काहू विषधर डसे, रुचि सो नीम चबाय ।
त्यों जिय ममता विषभखे, मगन विषयसुख पाय ॥३॥
निंबादिक चन्दन करै, मलयाचल की बास । दुर्जन तें सज्जन भये, रहत साधु के पास ॥४॥
पर्वराहु के ग्रहण सों,सूर सोम छवि छीन । संगति पाय कुसाधु की,सज्जनहोंय मलीन ॥५॥
(बनारसी)

चेतन कर्म अनादिके, पावक काठ बखान ।
क्षीर नीर तिल तेल ज्यों, खान कनक पाखान ॥१॥
देह माहिं चेतन दुखी, निज सुख पावे नाहिं ।
सिंह पींजरे में फँस्यों, बल न चलै तिस माहिं ॥२॥
मन थिर निर्मल बिन भये, ब्रह्म दरस किम होय ।
दर्पन काई अथिर जल, मुख दीसे नहिं कोय ॥३॥
बूंद उदधि मिल होत दधि, बाती फरस प्रकास ।
त्यों परमातम होत है, परमातम अभ्यास ॥४॥ (ज्ञानत)

नोट--उपमेय-वाक्य या वाक्यों को "दार्ष्टान्त", और उपमानवाक्य या वाक्यों को "दृष्टान्त" कहते हैं । इस अलंकारमें पूर्ववाक्य कहीं दार्ष्टान्त होता है और कहीं दृष्टान्त ॥

६५. तुल्ययोगिता (Equal Union)—जहां एक ही काल, गुण या क्रिया द्वारा कई उपमेय और उपमान के या प्रस्तुत और अप्रस्तुत के तुल्य-धर्म का सम्मेलन करके वाक्य को अलंकृत किया जाय । जैसे—

(१) इस लोक में अन्धकार से लुप्त शुभ मार्ग में प्रकाश डालने के लिये हे राजन् या तो

सूर्य है या आप का प्रताप ही ।

(२) चरण धरत चिन्ता करत, तनिक न भावे सोर ।
सुवरण को ढूंढत फिरत,कवि कामी अरु चोर । (इसमें श्लेषियालंकार भी है । न.९८)॥

(३) कमल कोक मधुकर खग नाना । हरषे सकल निशा अवसाना ॥

(४) अरुणोदय सकुचे कुमुद, उड़गन ज्योति मलीन । तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बल हीन । (इसमें दीपकालंकार और दृष्टान्तालंकार भी हैं । न.९४;१००)॥

(५) कोऊ काटो क्रोध करि, या सींचो करि नेह। वेधत पेड़ बँबूर के, तऊ दुहुन को देह ॥
कोऊ काटो क्रोधकरि, या सींचो करि नेह । चन्दनवृक्ष स्वभाव यह,दुहुन सुगंधी देह ॥

९६. व्याजस्तुति (Artful Praise)—जहां किसीकी स्तुति उसीकी या अन्य की निन्दावाचक शब्दों में अथवा अन्य की स्तुति द्वारा की जाय । जैसे—

(१) हे भगवन् ! आप कैसे न्यायरहित हैं कि अधमों,पतितों और पापियों तकको दुःखों से मुक्त करके आप अपना नाम अधमोद्धारक, पतितपावन और निस्तारक धराते हैं ।

(२) हे राजन् ! यह आप का शत्रु वही है न जिसने कल तक आप के दिये हुए वस्त्रों पर अपना जीवन व्यतीत किया है ।

(३) हे राजन् ! जब आप का यह सेवक ही आप के शत्रुरूपी शृगाल को कालके गालमें पहुँचाने के लिये सिंह से कम नहीं है तो आप को कष्ट उठाने की क्या आवश्का !

९७. गूढ़ निन्दा (Irony or Sarcasm)--जहां किसी की निन्दा उसी की या अन्य की स्तुतिवाचक शब्दों में अथवा अन्य की निन्दा द्वारा की जाय । जैसे--

(१) सेमर तू बड़ भाग है, कहा सराहो जाय ।
पंछी कर फल आश तिहिं, निशदिन सेवहिं आय ॥

(२) आप बड़े दयालु हैं कि नित्यप्रति वन के पशुओं तक को अधम पशु योनि संबन्धी दुःखों से मृगया द्वारा छुड़ा कर स्वर्गवासी करते रहते हैं !

(३) हे राजन् ! राम और लक्ष्मण के अतुल बल और पराक्रम से अभी आप अजमित हैं । इस पृथ्वीतल पर उनकी समानता करने वाला कौन जन्मा है ।

(४) राजन् ! आपके राज्याधिकारी लोग सबही बड़े अन्यायी, दुराचारी, अधर्मी और आप तक से निर्भय हो गए हैं ।

९८. श्लेष (Paronomasia)--जहां शब्दों के अनेकार्थ से एक ही वाक्य के अनेक अर्थ हो सकें । जैसे--

सुखदायक करों से प्रजा को आनंद देने वाले इस राजन् के उदय काल में सिंधुनाथ भी कम्पायमन होकर अपनी मर्यादा में आ गया ।

इस पूर्ण वाक्य के दो भिन्न भिन्न अर्थ (एक ऐतिहासिक घटना सूचक अर्थ और दूसरा प्राकृतिक घटना सूचक अर्थ) हैं । नीचे लिखे शब्दों के दो दो अर्थ में से पहिला पहिला अर्थ लगाने से वाक्य का ऐतिहासिक अर्थ निकलता है और दूसरा दूसरा अर्थ लगाने से एक प्राकृतिक घटना सूचित होती है:—

कर=(१) राज-कर या हाथ (२) किरण

राजन्=(१) राजा (२) चंद्रमा

उदय=(१) अभ्युदय (२) निकलना

सिन्धुनाथ=(१) सिंधु देश का राजा (२) महा समुद्र

कम्पायमान= (१) भयभीत (२) चलायमान

मर्यादा= (१) न्याययुक्त मार्ग या सीमा (२) सीमा, तट, किनारा।

वाक्य का अर्थ—(१) सुखदायक हाथों (या अल्प राजकरों) से प्रजा को आनन्द देने वाले इस राजा के अभ्युदय कालमें सिंधु देशका राजाभी भयभीत होकर अपनी सीमा में लौट गया (या न्याययुक्त मार्ग में आ गया)।

(२) सुखदायक किरणों से प्रजा को आनन्द देने वाले इस चंद्रमा के उदयकाल में महा समुद्र भी चलायमान होकर (चंद्रमाकी किरणों के आकर्षण से समुद्र में ज्वारभाटा अर्थात् चढ़ाव उतार हुआ करता है) अपनी चढ़ाव उतार की सीमा तक पहुँच गया।

९९. श्लेषिव (Paronomasia-like)—जहां किसी वाक्य में एक ही शब्द के अनेक अर्थ अन्य अनेक शब्दों के साथ अलग अलग लागू हों और श्लेष की समान सम्पूर्ण वाक्य अनेकार्थी न हो। जैसे—

चरण धरत चिन्ता करत, तनिक न भावे सोर।
सुवरण को ढूँढ़त फिरत, कवि कामी अरु चोर॥

यहां 'सुवरण' शब्द के तीन अर्थ (१) शुभ अक्षर, (२) सुन्दर रूप और (३) स्वर्ण धातु हैं जो यथाक्रम (१) कवि (२) कामी और (३) चोर के लिये लागू हैं।

दोहे का अर्थ—कवि लोग शुभ अक्षर की, कामी पुरुष सुन्दर रूप की और चोर स्वर्ण (धन) की खोज में सदैव लगे रहते हैं। यह तीनों ही किसी अन्य मनुष्य के पगों की आहट पर सचिन्त हो जाते और कोलाहल को अपने कार्य का बाधक जानते हैं।

यहां 'चरण' शब्द भी दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, अर्थात् (१) 'छन्दका पाद' जो कवि के लिये लागू है और (२) 'पग' जो शेष दो के लिये लागू है।

१०० दीपक (Illuminator)—जहां वर्ण्य और अवर्ण्य अर्थात् प्रस्तुत और अप्रस्तुत अथवा उपमेय और उपमानों का कथन किसी एक ही धर्म की समानता से एक साथ मिला कर किया जाय। जैसे—१. गृह, गढ़, गिरि और गुणी उच्चता ही से सम्मान पाते हैं (यहां गुणी वर्ण्य या प्रस्तुत अथवा उपमेय है, गृह, गढ़, गिरि उपमान हैं और उच्चता उपमेय व उपमान का साधारण धर्म है)।

२. रात्रि चन्द्रमा से, सरोवर कमल से, स्त्री सुशीलता और पातिव्रत धर्म से, पुष्प सुगंधि से, नेत्र अञ्जन से, मुख पान से, हाथ मिंहदी से, वृक्ष फल फूलों से, कुल सुपुत्र से, विद्वान् नम्रता से, धनी दान से, और मनुष्यदेह धर्मसेवन से ही शोभा पाते हैं।

३. नदीतट पर का वृक्ष, परिग्रहयुक्त यती, सुमंत्री रहित राजा, अभिमानी विद्वान्

प्रतीति रहित प्रीति, आचरणभ्रष्ट त्यागी और पराये घरों में फिरने वाली स्त्री, यह सब शीघ्र ही नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।

नोट १—इस अलंकार में उपमेय को प्रायः अंत में रखते हैं।

नोट २—दीपक नामक अलङ्कार के नाम से कारकदीपक, मालादीपक, आवृत्ति-दीपक (पदावृत्ति, अर्थावृत्ति, पदार्थावृत्ति या उभयावृत्ति), पूर्वदीपक, उत्तरदीपक, इत्यादि कई अन्य अलङ्कार हैं।

१०१. अतिशयालंकार या अत्युक्ति (The Exaggeration, or Hyperbole)—जहां अर्थ की उत्कर्षता के लिये असम्भाव्य वचन कहे जांय। जैसे—

१. हे राजन्! आप के मारे हुए शत्रुओं की स्त्रियों के निःश्वास वायु करके समुद्रों की तरंगें बढ़ जाने पर लुढ़कते हुए समुद्री पर्वतों की चोटियों के संघर्ष के प्रचंड शब्द से समुद्र में सोते हुए विष्णु भगवान की निद्रा खुल गई।

दोहा—तव रिपु तिय श्वासा पवन, चलित सिंधु गिरि शृङ्ग।
सघर्षण के शब्द से, विष्णु नींद भई भंग॥

२. हे राजन्! आप के अटूट दान से याचक जन भी कल्पवृक्ष बन गये॥

१०२ अतिशयोक्ति या रूपकातिशयोक्ति (A Hyperbole or An Exaggeration)—जहां उपमेय को छिपा कर केवल उपमान ही से उपमेय का बोध कराया गया हो। जैसे—

(१) दोहा—अतिशयोक्ति भूषण तहां, जहँ केवल उपमान।
कनकलता पर चंद्रमा, धरे धनुष द्वै बान॥

यहां कनकलता, चन्द्रमा, धनुष और बान, यह चार उपमान हैं। इनही से इनके उपमेय क्रमशः सुन्दरी, मुख, भौंहें, और नयनों का बोध हो जाता है।

(२) आज यह चंद्रमा किधर से उदय हुआ।

नोट—(१) रूपकातिशय (२) भेदकातिशय (३) अक्रमातिशय (४) चंचलातिशय या चपलातिशय (५) अत्यन्तातिशय (६) सापह्नवातिशय (७) संबन्धातिशय (८) असंबन्धातिशय, इत्यादि कई भेद अतिशयोक्ति के हैं।

१०३ हेतु (The Cause)—जहां कारण और कार्य का साथ साथ या अभेदरूप से कथन किया जाय। इसके निम्नोक्त दो भेद हैं:—

१. सहचर— राम को रूप निहारत ही उर मोद बढ़यो मिथिलेश लली के।

२. अभेद—हे नाथ! आप का अनुग्रह ही मेरे लिये पूर्ण आनन्द है।

१०४. चमत्कृत हेतु (Sagacious Cause, or Splendid Reason)-जहां किसी कार्यको उत्पन्न करने वाले कर्त्ता की योग्यताको युक्ति सहित प्रकट कर दिया जाय। जैसे-चन्द्रमा, दक्षिण वायु और पलाशवृक्ष (ढाकवृक्ष), यह तीनों ही विरही को काम पीड़ित कर मार ही डालते हैं; क्योंकि चन्द्रमा विष सहोदर है, दक्षिण दिशापति यम है, और पलाशवृक्ष पल की आशायुक्त है (पलाश=पल+आश=मांस की आशा रखने वाला)॥

१०५ पर्य्यायोक्ति (Circumlocution or Periphrasis)—जहां व्यङ्ग द्वारा अपना

इच्छित अर्थ प्रकट किया जाय, अर्थात् जहां स्पष्ट शब्दों में कहे बिना ही वक्ता का अभीष्ट अर्थ जान लिया जाय। जैसे—राजन ! महा संग्राम में आपकी सेना के अश्वारोहियों और शत्रुदल की स्त्रियों में भी वैर होगया है; क्योंकि ये अपने खुरों की रौंद से शत्रुओं के महलों में रज फैला रहे हैं और वे स्त्रियां अपने आँसुओं से उस रज को धो धो डालती हैं (अभीष्ट अर्थ = शत्रुदल की पराजय तथा मृत्यु)॥

होय विविक्षित अर्थ का, बिना कहे विज्ञान।
अन्य कल्पना से तिसे, पर्य्यायोक्ति बखान ॥ १ ॥
अरितिय अरु तव दल तुरँग, वैर परस्पर होत।
ये खुर रज डारत महल, वे निज अंसुवन धोत ॥ २ ॥

नोट—इस अलङ्कार का एक भेद मिष-पर्य्यायोक्ति है जिसमें किसी छल या बहाने से अपना अभिप्राय प्रकट किया जाता या इच्छित् कार्य साधा जाता है।

१०६. परिवृत्ति (The Return)—जहां एक वस्तु से दूसरी समान या असमान अथवा न्यूनाधिक वस्तु का पलटा करने का भाव दिखाकर वाक्य को अलंकृत किया जाय। जैसे—(१) हे राजन् ! आपका शत्रुदल दीपकोंसे प्रकाशित अपने निज स्थानोंको छोड़कर सर्पोंकी मणियों से प्रकाशित पर्वतों की गुफाओं में आराम कर रहा है (अर्थात् भय से जा छिपा है)। (२) इस प्रतापी राजा ने शत्रुओं को शस्त्र-प्रहार देकर उनका जीवन लेलिया और उनकी स्त्रियों का शृंगार छीन कर पलटे में सदैव के लिये उन्हें महान दुःख देदिया (अर्थात् शत्रुओं को जीत लिया)॥

(३) भगवन् मो मन लेय के, दीनो दुःख अपार।
जब तव मुख दीखे नहीं, देखूं कमल निहार ॥

१०७. यथासंख्यालङ्कार (Relative Order)—जहां कई उक्त पदार्थों से सम्बन्ध रखने वाले अर्थों को उतनी ही संख्या के अन्य पदार्थों के साथ यथाक्रम या अक्रम लगाकर वाक्य को अलङ्कृत किया जाय। जैसे—(१) कमलनाल ... और कमल पुष्प ने अपनी कोमलता, लाली और सुन्दरता को हे भगवन् अ... लर ... वर्ण चरणों, और मनोहर सुन्दरता... से ही प्राप्त किया ...

यथासंख ... , होय यथाक्र...
सीता ... ख, लजहिं ...

नोट—इस अलङ्कार के ... (२) अ...
युक्त दोनों उदाहरण यथास... । दूसरे
(यह निकृष्ट भेद माना जाता ...

सचिव वैद्य गुरु ...
राज्य धर्म्म तन ...

१०८. विषमालङ्कार (Incongr...
संयोजन करके वाक्य को अलङ्कृत ...
(२) कार्य कारण विरोध (३) विपरीत ...

१. विषम जहां सम्बन्ध हो, अनुचित हुई इक ओर।
किंत सिय अति कोमल चरण, कित बन गमन कठोर।
२. कौन अनोखी बात यह, देखो होय सचेत। उज्वल दीपक नित्य ही, कालो काजल देत॥
३. ज्ञानी समदर्शी मुनी,तज क्रोधादि विकार। दुर्जन के दुर्वचन सुन,मानत बहु उपकार॥

१०९. समालङ्कार (Equality)—जहां यथा योग्य दो सम और अविरुद्ध बातोंका संयोजन करके वाक्य को अलंकृत किया गया हो।

१. जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक विविध होय मग जाता॥
२. चिर जीवो जोरी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥

(वृषभानुजा = वृषभानु की पुत्री, वृषभ की अनुजा अर्थात् बैल की छोटी बहिन = गाय; हलधर के बीर = बलदेव जी के भाई, हलधारण करने वाले के भाई अर्थात् बैल के भाई = बैल)।

नोट—विषमालङ्कार के समान इस अलङ्कार के भी तीन भेद हैं।

११०. सहोक्ति अलंकार (Connected Description)—जहां कारण और कार्य का साथ २ होना दिखाकर वाक्य को अलङ्कृत किया जाय। जैसे-१.इस राजा ने संग्राम में शत्रुओं के यश के साथ ही धनुष को लिया, उनके गर्व के साथ ही धनुष को नवाया, और उनकी लक्ष्मी के साथ ही धनुष को खींचा।

२. सो सहोक्ति जहँ कार्य अरु, कारण साथहि होय।
भूप राज्य यश सिन्धु तक, साथहि पहुँचे दोय॥

१११. विरोधालंकार या विरोधाभासालंकार (An Apparent Contradiction or Incongruity)—जहां वाक्य को पढ़ने या सुनने ही तो उसमें कुछ विरोधार्थ दीख पड़े, परन्तु वाक्य को विचार पूर्वक समझने से विरोध का अभाव हो जाय।

यहै विरोधाभास, भासे जहां विरोध सो।
या मुख चन्द्र प्रकास, सुधि आवे सुधि जात है॥

नोट—जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य के भेद से इस अलंकार के १० भेद हैं।

११२. विभावनालंकार (Peculiar Causation)—जहां कारण के अभाव में या अपूर्णता में अथवा विरोधी या प्रतिबन्धक कारण की उपस्थितिमें कार्य की उत्पत्ति दिखा कर वाक्यको अलंकृत किया जाय तो उसे 'विभावनालंकार' कहतेहैं। जैसे-

१. बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करे विधि नाना॥
२. काम कुसुम धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने वश कीन्हे॥
३. भूख गई घटि, कुल गई लटि, सूख गई कटि, स्वाद परयो है।
चैन चलाचल, नैन टलायल, चैन नहीं पल, व्याधि भरयो है॥
अंग उपंग थके सरवंग, असंग किये जन नाक सरयो है।
'द्यानत' मोह चरित्र विचित्र, गई सब सोभ न लोभ टरयो है॥

नोट—इस अलंकार के छह भेद हैं।

११३. अप्रस्तुत प्रशंसालंकार (Indirect Laudatory Remark or Description)—जहां अप्रस्तुत की (वर्णनीय से अन्य की) सत्प्रशंसा या असत्प्रशंसा (स्तुति या निन्दा) की जाय। जैसे—(१) इस संसार में राजा और चोर आदि के भय से रहित सुख की नींद सोने वाला एक भिक्षुक ही सुखी है।

(२) लोगों के पाँओं से खुँदी हुई अय धूल ! तू ही इस संसार में धन्य है कि राजा महाराजाओं के सिर पर के ताज पर भी तुझे बैठने का अधिकार प्राप्त है।

में एक प्रश्न का एक उत्तर अथवा कई प्रश्नों का भी एक ही उत्तर होता है जो प्रश्न में विद्यमान नहीं रहता। इसके मुख्य भेद दो हैं:--

(१) जिनके कई प्रश्नों का एक उत्तर हो। जैसे--

१. पंथी प्यासा क्यों ? गधा उदासा क्यों ? उत्तर-लोटा नहीं।

२. गेहूं सूखा खेत में, घोड़ा हींस कराय।
पलँग होत घर सोइये, कारण देहु बताय ॥ उत्तर-पाया नहीं ॥
(पाया नहीं = सींचा नहीं, जल पिलाया नहीं, पलँग का पाया नहीं) ॥

३. पान सड़ै घोड़ा अड़ै, पाठ न याद रहाय।
रोट जलै अग्नी विषै, कारण देहु बताय ॥ उत्तर—फेरा नहीं ॥

४. मोती मोटा मोल कम, सरवर कोई न न्हाय।
भूप भज्यो संग्राम तें, कारण देहु बताय ॥ उत्तर—आब नहीं ॥
(आब = आबदारी, जल, तेज)

(२) जिनमें केवल एक ही प्रश्न करके एक ही उत्तर मांगा गया हो। जैसे-

१. पानी में निसदिन रहे, जाके हाड़ न मास।
काम करे तरवार का, फिर पानी में बास ॥ (कुम्हार का डोरा)

२. शीश जटा पोथी गहे, स्वेत वसन तन माहिं।
जोगी जंगम है नहीं, ब्राह्मण पण्डित नाहिं ॥ (लहसन)

३. बाँवी बाकी जल भरी, ऊपर बारी आग।
सबै बजाई बाँसुरी, निकस्यो कारो नाग ॥ (हुक्का)

४. लाग कहैं लागे नहीं, बरजत लागे धाय।
कही पहेली एक में, दीजै चतुर बताय ॥ (ओष्ठ)

५. श्याम वरण पीताम्बर काँधे, मुरलीधर नहिं होय।
बिन मुरली वह नाद करत है, बिरला समझे कोय ॥ (भौंरा)

६. एक अचम्भा देखो चल। सूखी लकड़ी लागो फल ॥
जो कोई उस फलको खाय। पेड़ छोड़ वह अन्त न जाय ॥ (बरछी)

७. डाल दीजे, देखा कीजे ॥ (चिक)

८. हाथ में लीजे, देखा कीजे ॥ (दर्पण)

नोट १—उपरोक्त प्रहेलिकाएं अर्थालङ्कार सम्बन्धी एक प्रकार की "बहिर्लापिका" हैं जिनका उत्तर बाहर ही से दिया जाता है।

नोट २--जिन प्रहेलिकाओं में कोई स्थूल उत्तर प्रकट करके और फिर वहीं उसका निषेध भी दिखा कर कोई अन्य उत्तर मांगा जाता अथवा उसी के अन्तिम भाग में बता दिया जाता है उन्हें "मुकरी" या "कहमुकरनी" कहते हैं। यह प्रायः चार पादों में किसी स्त्री की ओर से कही जाती हैं। और चौथे पाद में उत्तर प्रायः 'साजन' (पति) शब्द में किसी सहेली से पाकर और फिर निषेध पूर्वक अन्य उत्तर दिया जाता है ॥

१२०. संकर अर्थालङ्कार (The Combination of two or more *dependent* Figures of Speech)--जहां कई अर्थालङ्कारों का मेल हो। जैसे--

शशि सों उज्वल मुख लसै, खंजन हैं मनु नैन।
अधर नासिका बिम्ब शुक, मधुर सुधा से बैन ॥

यहां उपमा, उत्प्रेक्षा, और यथासंख्या, इन तीन अर्थालङ्कारों का संग्रह है।

नोट--इसे 'संसृष्टालंकार' भी कह सकते हैं।

१२१. लोकोक्ति (Popular Saying)--जहां वाक्य में वाक्यार्थ की पुष्टि के लिये कोई लोकप्रसिद्ध कहावत रख कर वाक्य को अलंकृत किया जाय। जैसे--

१. चलो सखी उत जाइये, जहाँ बसें ब्रजराज।
गोरस बेचत हरि मिलें, "एक पंथ दो काज" ॥

२. जनरंजन अघगंजन 'प्रभुपद', कंजन करत रमा नित केल।
चिन्तामन कल्पद्रुम पारस, बसत जहां सुर चित्रावेल ॥
सो पद त्याग मूढ़ निशवासर, सुखहित करत क्रिया धनमेल।
नीति निपुन यों कहैं ताहि पर, "बालू पेल निकाले तेल" ॥ (वृन्दावन)

१२२. अवज्ञा या तिरस्कार (Disregard or Contempt)--गुण वाली वस्तु में कोई दोष दिखा कर जहां उसे त्यागने का कथन किया जाय, अथवा जहां एक के गुण या अवगुण को दूसरे की ओर से त्यागने का भाव दिखाया जाय। जैसे--

१. वा सोने को जारिये जासों टूटे कान ॥
२. कहा भानु को दोष है देखे जो न उलूक ॥
३ चन्दन विष लागै नहीं, लपटे रहैं भुजङ्ग ॥

१२३. काव्यलिंग (Poetical Reason)--जहां युक्ति से वाक्यार्थ का समर्थन कर दिया जाय। जैसे--कनक कनक तें सौ गुणी, मादकता अधिकाय।
यह खाये बौरात है, वह पाये बौरात ॥ (कनक = स्वर्ण, धतूरा)

अर्थ--स्वर्ण अर्थात् सोने में धतूरे से सौगुणी अधिक मादकता (नशा लाने वाली शक्ति) है। क्योंकि धतूरा तो खाये जाने पर खाने वाले को पागल और बावला बनाता है, परन्तु स्वर्ण बिना खाये केवल पालेने ही से पाने वाले को पागल बना देता है।

नोट--इस उदाहरण में यमकालंकार भी है।

१२४. असंगति (Disconnection)--जहां उद्देश्यविरुद्ध या हेतुविरुद्ध अथवा द्रव्य क्षेत्र कालादिविरुद्ध अनुचित कार्यका होना दिखाकर वाक्यको अलंकृत किया जाय। जैसे--१. मोह मिटावन हेतु प्रभु, तुम लीनों अवतार।
उलटो मोहन रूप धर, मोह लियो संसार ॥

२. सीता रावण ने हरी, बाँधो गयो समुद्र।
३. ते पितु मातु जिये सखि कैसे। जिन पठए वन बालक ऐसे ॥
४. गधा न कूदा कूदी गौन। यहै अचम्भा देखे कौन ॥
५. अब पछताये होत क्या, चिड़ियां चुग गईं खेत।
कूप खुदाये लाभ क्या, अग्नि जार घर देत ॥

१२५. न्यायालंकार--काव्यरचना में वाक्यके साथ वाक्यार्थ की पुष्टि के लिये जहां निम्नलिखित किसी न्याय (लोक प्रचलित अनिवार्य नीति) का प्रयोग किया जायः--

(१) अजापुत्र--सबलके सामने निर्बलका वश न चलनेको 'अजापुत्र न्याय' कहते हैं।
(२) अरण्य रोदन--बल विद्या ऐश्वर्य आदि में हीन पुरुषों की बात पर ध्यान न दिये जाने को अथवा अति कोलाहल में या असमर्थों के सन्मुख कही हुई बात न सुनी जाने को 'अरण्यरोदन न्याय' कहते हैं।

(३) अरुन्धती--सुगम चर्चा से कठिन की ओर, और स्थूल से सूक्ष्म की ओर क्रमशः चलने को 'अरुन्धती न्याय' कहते हैं।

(४) अन्धक वर्त्तिकीय (अन्धे के हाथ बटेर)--अकस्मात् किसी इष्ट वस्तु के मिलजाने को 'अन्धक वर्त्तिकीय न्याय' कहते हैं।

(५) अन्धगज--किसी अनदेखी वस्तु का वर्णन अनेक लोगों द्वारा अनेक प्रकार से अपने अपने ज्ञान और अनुमानके अनुसार किया जाना 'अन्धगजन्याय' कहलाता है।

(६) अन्धदर्पण--अति मूर्ख को शिक्षा का व्यर्थ जाना 'अन्धदर्पण न्याय' है।

(७) अंधपरम्परा--हित अहित को और बात के मरम को समझे बिना किसी पुरानी चाल पर केवल पुरानी होने के कारण आरूढ़ रहना 'अंधपरम्परा न्याय' है।

(८) आकाशताड़न--किसी कार्यसिद्धि के लिये निरर्थक प्रयास करना 'आकाशताड़न न्याय' है।

(९) आकाश-पुष्प--किसी असंभव बात की कल्पना करना 'आकाश-पुष्प न्याय' है।

(१०) ऊषर वृष्टि--अंधदर्पण न्याय ही को 'ऊषर वृष्टि न्याय' भी कहते हैं। न.(६)

(११) ओसजल पियासान्त--किसी अति अल्प वस्तु से अपने तृषातुर मन को संतुष्ट कर लेना 'ओसजल पियासान्त न्याय' है।

(१२) कदलीफल--सीधी बातोंसे कार्य सिद्ध न हो सकने को 'कदलीफल न्याय' कहते हैं।

(१३) काकतालीय--भाग्यवश अचानक किसी शुभ या अशुभ निमित्त के मिलने से अकस्मात् इष्ट या अनिष्ट फल की प्राप्ति हो जाना 'काकतालीय न्याय' है।

(१४) कूप मण्डूक--अपनी अतिअल्पज्ञता और अनुभवशून्यता के कारण अपने अनुभव और बुद्धि की पहुँच से बाहर के पदार्थों के अस्तित्व का अभाव मानना 'कूप-मण्डूक न्याय' है।

(१५) कूर्म्मांग--निज सीमा के भीतर ही संकुचित विस्तरित होना 'कूर्म्मांग न्याय' है।

(१६) कैमुतिक--बड़े बड़ों को परास्त करलेने पर छोटों को परास्त करने की चिन्ता न करना 'कैमुतिक न्याय' है।

(१७) कौण्डिन्य--प्रयत्न से थोड़ा सुधार होने पर अधिक सुधार होनेकी आशा करना "कौण्डिन्य न्याय" है।

(१८) क्षीरनीर--दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर मिलकर तन्मय हो जाना "क्षीर-नीर न्याय" है।

(१९) गुड्डरिकाप्रवाह या भेड़चाल (गुड्डरी=भेड़)--एक जिधर को चले उधर ही को बिना योग्य अयोग्य विचारे या मार्ग कुमार्ग देखे औरों का भी उसी ओर को चल पड़ना "भेड़चाल" या "गुड्डरिकाप्रवाह न्याय" है।

(२०) गणपति--थोड़ी सी युक्ति या सहारे के मिल जाने पर बड़े बड़े कार्यों को साध लेना "गणपति न्याय" है।

(२१) घटप्रदीप--परोपकार पर लेश ध्यान न देकर केवल अपना ही भला चाहना "घटप्रदीप न्याय" है।

(२२) घुणाक्षर—किसी साधारण या अनुपयोगी कार्य के करने में औरों के लिये अन्य ही किसी उत्तम और उपयोगी कार्य का बन जाना "घुणाक्षर न्याय" है।

(२३) चन्द्रचन्द्रिका—गुणों का गुणों से अलग न होना "चन्द्रचन्द्रिका न्याय" है।

(२४) जलतरङ्ग—शब्दान्तर होने पर भी वस्तु स्वरूप का रूपान्तर न होना "जलतरङ्ग न्याय" है।

(२५) जलतुम्बिका—कितना ही छिपाये जाने पर भी किसी वस्तु का या बात का न छिपना "जलतुम्बिका न्याय" है।

(२६) तिलतण्डुल—दो या अधिक वस्तुओं का परस्पर कितना ही मेल चाहे दुग्ध और जलवत भी हो जाय तो भी उनकी भिन्नता नष्ट न होना "तिलतण्डुल न्याय" है। इसी को "तैलतुष न्याय" या "कणतुष न्याय" अथवा "जडचेतन न्याय" भी कहते हैं।

(२७) दण्डचक्र—कार्य सिद्धि के लिये दो या अधिक वस्तुओं में परस्पर एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता होना "दण्डचक्र न्याय" है।

(२८) दण्डपूपिका (दण्ड=लाठी, पूपिका=पूआपूरी, लाठी से बँधे पूआ पूरी)—अवलम्बन के नष्ट होने पर अवलम्बी का (अर्थात् आधार के नष्ट होने पर आधेय का, या आश्रय के नष्ट होने पर आश्रयी का, या शरण के नष्ट होने पर शरणागत का) भी नष्ट होना "दण्डपूपिका न्याय" है।

(२९) दिनदिनपति—'चन्द्रचन्द्रिकान्याय" ही को "दिनदिनपति न्याय" भी कहते हैं। न (२३)

(३०) देहलीदीपक—किसी कार्य से स्वपरोपकार का होना अर्थात् अपने लाभ के साथ दूसरों का भी लाभ होना "देहलीदीपक न्याय" है।

(३१) नृसिंह—दो अमेल या असम्बन्ध वस्तुओं या बातों या कार्यों का मेल होना "नृसिंह न्याय" है।

(३२) पंगन्ध (पंगु+अंध)—जब दो या अधिक व्यक्तियों में से प्रत्येक में भिन्न भिन्न कोई एक एक ऐसा गुण हो जिनके मेलसे किसी इच्छित कार्यकी पूर्णता में सफलता प्राप्त हो सके तो उन व्यक्तियों का मिल कर अपने कार्य में सफलता प्राप्त करना "पंगन्ध न्याय" है।

(३३) पिष्टपेषण—सिद्ध कार्य की सिद्धि के लिये वृथा ही फिर फिर प्रयत्न करना "पिष्ट पेषण न्याय" है।

(३४) बालूतेल—"आकाशताड़न न्याय" ही को "बालूतैल न्याय" भी कहते हैं। न (८)

(३५) बीजांकुर—जब दो परस्पर कारण कार्यरूप वस्तुओंमें यह न जान पड़े कि यास्तव में पहिली वस्तु कौन सी है और पिछली कौन सी, तो उनका ऐसा पारस्परिक सम्बंध "बीजांकुर न्याय" है।

(३६) भण्डूकप्लुति—विषय से विषयान्तर होकर बोलना "भण्डूकप्लुति न्याय" है।

(३७) यक्षदृष्ट—जिस वस्तु को कभी किसी ने स्वयं न देखा हो किन्तु एक से दूसरे ने, दूसरे से तीसरे ने, तीसरे से किसी चौथे व्यक्ति ने, और इसी प्रकार अन्यान्य ने

सुन सुनाकर उस वस्तुके अस्तित्व को मान लिया हो तो इस मानता या स्वीकारता या श्रद्धान को "यक्षवृक्ष न्याय" कहते हैं।

(३८) रात्रिदिवस--दो परस्पर विरोधी वस्तुओं में से किसी एक के सद्भाव में दूसरी का अभाव होना "रात्रिदिवस न्याय" या 'प्रकाशान्धकार न्याय' या 'तमोद्योत न्याय' है।

(३९) वृद्धकुमारीवाक्य--किसी से कुछ मांगने में चातुर्यता से एक ही साधारण वचन से बहुवचनों का काम निकाल लेना, अर्थात् थोड़ी वस्तु मांगने का भाव दिखाकर बहुत कुछ मनमाना मांग लेना "वृद्धकुमारीवाक्य न्याय" है।

(४०) सबलनिर्बल--"अजापुत्र न्याय" ही को "सबलनिर्बल न्याय" भी कहते हैं। नं. (१)

(४१) सर्षलीकताड़न--अवसर निकल जाने पर किसी कार्य सिद्धि के लिये प्रयास करना "सर्षलीकताड़न न्याय" है।

(४२) सुन्दोपसुन्दन (सुन्द = एक दैत्य का नाम, उपसुन्द = सुन्द का छोटा भाई)--प्रबल शत्रुओं के परस्पर के युद्ध में दोनों का नष्ट होना "सुन्दोपसुन्दन न्याय" है।

(४३) सूचीकटाह (सूची = सुई, कटाह = कढ़ाह या बड़ी कढ़ाई)--सुगम कार्य को निपटा कर कठिन में हाथ डालना "सूचीकटाह न्याय" है।

(४४) स्थालीपुलाक (बटलोई का चावल)--किसी वस्तु के अंश को देख कर अंशी (पूर्ण वस्तु) के गुणावगुण को पहचान लेना "स्थालीपुलाक न्याय" या 'हंडकण न्याय' है।

(४५) हृदनक्र (हृद = अगाध जलाशय, नक्र = नाकू)--"पंगवन्ध न्याय" ही को "हृदनक्र न्याय" भी कहते हैं। न. (३५)

नोट १—उपरोक्त नं० ६३ से नं० १२५ तक के शब्दालंकार और अर्थालङ्कारों में से कई एक अलंकारों के कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं जिनमें उभयालङ्कारों या संसृष्टालंकारों (नं० ५२, ५३) के लक्षण मिलते हैं। अतः वे उदाहरण इनके भी उदाहरण माने जासकते हैं।

नोट २--कुछ विद्वानों की सम्मति में जिन वाक्यों में एक से अधिक किसी ही प्रकार के अलंकार हों वे सब वाक्य उभयालङ्कार के ही उदाहरण हैं, अर्थात् संसृष्टालङ्कार भी उभयालंकार ही के अन्तर्गत एक भेद है।

नोट ३—उपर्युक्त अलङ्कारों के अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के शब्दालंकार, अर्थालङ्कार और उभयालंकार हैं। यहां संक्षिप्तता के विचार से अलंकारों के स्वरूपादि का निरूपण केवल दिग्दर्शन मात्र है इस सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक अजितसेनाचार्य आदि रचित अलंकार चिन्तामणि, काव्यालंकार, कविराजमार्ग, वाग्भटालंकार आदि संस्कृत ग्रन्थ या उनकी टीकाएँ और भानुकवि रचित 'काव्यप्रभाकर' आदि हिन्दी भाषा ग्रन्थ अवलोकन करें।

नोट ४--हिन्दी काव्य ग्रन्थों में गोस्वामि तुलसीदास जी कृत रामायण आदि के अतिरिक्त कविवर भैया भगवतीदास, बनारसीदास, द्यानतराय, वृन्दाबन, भूधरदास आदि रचित ब्रह्मविलास, बनारसी विलास, द्यानतविलास (धर्म विलास) वृन्दाबन विलास, भूधरविलास आदि ग्रन्थ अनेकानेक प्रकार की भावपूर्ण, रसीली और अनेक प्रकार के अलङ्कारों से अलंकृत पद्यात्मक रचनाओं से भरपूर हैं। जैन व अजैन सर्व ही हिन्दी काव्य

रसिकों से हमारा सविनय अनुरोध है कि वे रामायणादि के अतिरिक्त इन्हें भी अवलोकन करने का सौभाग्य प्राप्त करें। यह ग्रन्थ "हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई' से प्रकाशित हो चुके हैं।

नोट ५—संस्कृत या ग्रन्थों में महाकवि कालिदास माघ भारवि, भट्टि, वाणभट्ट, आदि रचित ग्रन्थों के अतिरिक्त महाकवि जिनसेनाचार्य, सोमदेव, क्षेमेन्द्र, धनंजय, मेघ विजयगणि, जटाचार्य, जगन्नाथ आदि रचित पार्श्वाभ्युदय, यशस्तिलक चम्पू, भारतमंजरी, धर्मशर्माभ्युदय, द्विसन्धान काव्य, चतुःसंधानकाव्य, सप्तसन्धानकाव्य, चतुर्विंशति सन्धानकाव्य आदि ग्रन्थ अपनी अलंकृत रचना में अद्वितीय हैं। अन्तिम ४ ग्रन्थों में अन्य अलङ्कारों के अतिरिक्त श्लेष व श्लेषवत् शब्दालङ्कारों व अर्थालङ्कारों (नं० ९८,९८ ९९) की मुख्यता है जिनमें क्रम से प्रत्येक छन्द के दो दो, चार चार, सात सात, और चौबीस चौबीस अर्थ ऐसी उत्तम रीति से लगते हैं जिससे प्रत्येक अकेला अकेला ग्रन्थ क्रम से दो, चार, सात, या चौबीस भिन्न भिन्न ऐतिहासिक या प्राकृतिक घटनाओं के अद्वितीय समह या पर अपूर्व अद्भुत दृश्य ज्ञात पड़ता है।

दृश्यकाव्य

A DRAMATIC COMPOSITION.

६. नाटक

(A Play or Drama)

१२६. नट (Actor)—किसी अन्य व्यक्ति का रूप धारण करके उसी के कार्यों का अनुकरण करने वालों को 'नट' कहते हैं॥

१२७ नटाचार्य (The Chief Actor)—नाट्यकी सारी व्यवस्था करने और सब पात्रों को यथोचित रूप देकर उनसे अभिनय कराने वाले को "नटाचार्य" कहते हैं॥

१२८ सूत्रधार (The Manager or Chief Actor)—नटाचार्य ही को 'सूत्रधार' भी कहते हैं जिसके हाथ में नाटक सम्बन्धी सर्व सूत्र रहते हैं॥

१२९ नटी (The Chief Actress)—सूत्रधार की स्त्री को 'नटी' कहते हैं॥

१३० नाटक (A Play)—नट नटी के कर्म को "नाटक" कहते हैं॥

१३१ नाट्य (The Art or Science of Acting)—नाटक की कला या विद्या को 'नाट्य' कहते हैं॥

१३२ रूपक (A Drama or one of the two main Divisions of a Drama)—नाटक ही का दूसरा नाम 'रूपक' भी है॥

किसी २ की सम्मति में 'रूपक" और "उपरूपक" यह नाटक के दो भेद हैं, जिन में से रूपक १० उपभेदों में और उपरूपक १८ उपभेदों में विभक्त हैं।

१३३ नाट्य शास्त्र (Dramaturgy, or a Work of the Dramatic Science)-जिस ग्रन्थ में नाटक सम्बन्धी नियमोपनियमादि दिये गये हों॥

१३४ नाट्याचार्य (A Dramatist)—नाट्यशास्त्र के रचयिता को "नाट्याचार्य' कहते हैं॥

१३५. अभिनय (A Theatrical Action)—नाटक में किसी अन्य व्यक्ति के कार्यों का जो तद्रूप अनुकरण किया जाता है उस अनुकरण ही को "अभिनय" कहते हैं॥

१३६. पात्र (Dramatis Personæ, Dramatic Personages)—नाटकमें जिन भूतपूर्व पुरुषों के कार्यों का अनुकरण किया जाता है उन्हें (अथवा अनुकरण करने वालों को भी) 'पात्र" या 'नाटक पात्र' कहते हैं॥

१३७. नायक (The Hero of a Drama)–नाटक पात्रों में से मुख्यपात्र को जिसके नामसे प्रायः नाटक का नाम प्रसिद्ध होता है "नायक" या "नाटकनायक" कहते हैं। जैसे–रामायण नाटक में "राम" ॥

१३८. नायिका (The Heroine)–नाटकमें यदि कोई स्त्रीभी मुख्य पात्र हो तो उसे 'नायिका' कहते हैं। जैसे–रामायण नाटक में "सीता"।

१३९. उपनायक (Another Hero, inferior to the chief one)--द्वितीय गौणनायक को (यदि कोई हो) 'उपनायक' कहते हैं। जैसे–रामायणनाटक में "लक्ष्मण"।

१४०. प्रतिनायक (A Rival or Opponent to the Hero)--नायक के प्रतिपक्षी को (यदि कोई हो जैसा कि प्रायः वीररसयुक्त नाटकों में होता है) 'प्रतिनायक' कहते हैं। जैसे--रामायण नाटक में 'रावण' ॥

१४१. पारिपार्श्विक (An Assistant of the Chief Actor or Manager of a Play, one of the Interlocutors in the Prologue)--सूत्रधार के सहायक को "पारिपार्श्विक" कहते हैं ॥

१४२. पीठमर्द (A close Companion of the Hero)—नायक के साथी को 'पीठमर्द' कहते हैं।

१४३. विदूषक (A Jocular, Jocose or Catamite)--नायक के मित्र को जिसका काम प्रायः लोगों को हंसा कर उन्हें प्रसन्न करना होता है "विदूषक" कहते हैं।

१४४. विट (A Witty & Artful Companion)--बात चीत करने में कुशल, वेश आदि धारण करने में चतुर और धूर्त्तता में निपुण पुरुष को 'विट' कहते हैं जो शृंगार रस संबन्धी कार्यों में नायक या नायिका का सहायक होता है।

१४५. चेट--विट ही को 'चेट' भी कहते हैं।

१४६. रङ्गभूमि (A Theatrical Stage)--अभिनय दिखाये जाने के स्थल को 'रङ्गभूमि' या 'रंग स्थल' कहते हैं।

१४७. नेपथ्य (The part behind the Stage)--रंगभूमि के पीछे का भीतरी भाग जहां से नाटक पात्र अपना अपना रूप धारण करके रंगभूमि में आते हैं "नेपथ्य" कहलाता है।

१४८. नाट्यशाला (Theatre)--रंगभूमि और नेपथ्य के संयुक्त स्थान को "नाट्यशाला" या "रंगशाला" कहते हैं।

१४९. जवनिका (A curtain)--नाटक के किसी विभाग (अङ्क) की समाप्ति पर रङ्गभूमि को ढाँकने के लिये अथवा कोई नवीन दृश्य दिखाने के लिये रङ्गभूमि में जो चित्रपट डाला जाता है उसे "जवनिका" अथवा 'परदा' कहते हैं।

१५०. बाह्यपट (Outer Curtain, Drop Scene)--जो जवनिका रंगभूमि के आगे उसे ढांकने के लिये डाली जाती है उसे 'बाह्यपट' कहते हैं।

१५१. अन्तःपट (Inner curtain)--जो जवनिका रंगभूमि में कोई दृश्य दिखाने के लिये डाली जाती है उसे "अन्तःपट" कहते हैं।

१५२. प्रतिकृति (A Reflection)--किसी चित्रित वस्त्रादि द्वारा दिखाई गई नदी, पर्वत, वन, उपवन, या प्रासाद आदि की प्रतिच्छाया को 'प्रतिकृति' कहते हैं।

१५३. अन्तःपटी--प्रतिकृति ही को "अन्तःपटी" भी कहते हैं।

१५४. पटाक्षेप (Dropping a curtain)--जवनिका के गिराये जाने को "पटाक्षेप" कहते हैं।

१५५. वेशभूषा (Suitable decoration to disguise)—किसी पात्र के रूप को वेश, और वेश की यथोचित सजावट को 'वेशभूषा' कहते हैं।

१५६. अङ्क (An Act or a Portion of a Play)—नाटक के विभागों में से प्रत्येक को 'अङ्क' कहते हैं।

१५७. गर्भांक (An Interlude during an Act)—अङ्क के अन्तर्गत सूत्रधार कृत मंगल और प्रस्तावना आदि का जो प्रथम विभाग होता है उसे 'गर्भांक' कहते हैं।

१५८. पताकास्थान (An Intimation of an Episodical Incident)—वर्ण्य वस्तु में चमत्कार लाने के लिये जहां करना कुछ हो और कोई आकस्मिक कारण विशेष दिखा कर कुछ और ही करनेके लिये बाधित होना दिखाया जाय तो इस कार्य को "पताका स्थान" कहते हैं। नाटक में यह 'पताकास्थान' कई प्रकार से लाया जाता है॥

१५९. अर्थोपक्षेपक (An Introductory or Describing Scene)—नाटक में उससे सम्बन्ध रखने वाली जोजो बातें किसी अनुकरण द्वारा प्रत्यक्ष दिखाने योग्य न हों अथवा दिखाना अभीष्ट न हो परन्तु उनकी सूचना देना आवश्यक हो तो ऐसी सूचनाएँ सूत्रधार द्वारा यथा अवसर दी जाती हैं। इन सूचनाओं ही को 'अर्थोपक्षेपक' कहते हैं।

(१) नेपथ्य से जो सूचना दी जाय उसे 'चूलिका' कहते हैं।

(२) किसी अङ्क के अन्त में अगले अङ्क में होने वाली बातों की जो सूचना कभी कभी पात्रों द्वारा दी जाती है उसे 'अङ्कावतार' कहते हैं।

(३) अङ्क में जिन बातों का वर्णन है उनके कारण की सूचना को 'अङ्कमुख' कहते हैं।

(४) पहले हुई या आगे होने वाली बातों की सूचना को 'विष्कम्भक' कहते हैं।

(५) किसी नीच पात्रद्वारा दी जाने वाली अतीत या अनागत बातों की सूचना को 'प्रवेशक' कहते हैं॥

१६०. नान्दी (A Eulogy, or an Auspicious Introduction at the beginning of a Drama)—नाटक के प्रारम्भमें सूत्रधार द्वारा जो मंगलाचरण किया जाता है उसे 'नान्दी' या 'नान्दी पाठ' कहते हैं। सूत्रधार को भी कभी कभी 'नान्दी' कहते हैं॥

१६१. प्ररोचना (A Favourable & Stimulative Introduction)—मंगलाचरण के पश्चात् सूत्रधार नाटक की प्रशंसादि द्वारा जो दर्शकों को नाटक देखने के लिये उत्सुक करता है। उसे 'प्ररोचना' या 'समापूजा' कहते हैं॥

१६२. प्रस्तावना (A Prologue or Prelude)—मंगलाचरण और प्ररोचना के पश्चात् सूत्रधार और नटी में जो नाटक प्रारम्भ करने के सम्बन्ध में कुछ बातचीत होती है उसे 'प्रस्तावना' या 'आमुख' कहते हैं।

१६३. भाण (A Dramatic Composition containing instructive Mimicry, Sarcasm, etc)—धूर्त और कुशील लोगों का चरित दिखा कर दर्शकों को हँसाने और वैसे आचरण से बचने की शिक्षा देने के लिये जो दृश्य दिखाया जाता है उसे 'भाण' कहते हैं।

१६४ प्रहसन (A Dramatic Composition causing hearty laughter)—'भाण' के समान जिस दृश्य का मुख्य उद्देश्य हँसना हँसाना और दर्शकों को प्रसन्न करना ही होता है उसे 'प्रहसन' कहते हैं॥

१६५. नाट्य रासक (Amorous Pastimes with sportive dancing etc.)—अनेक प्रकार के ताल और लय सहित तथा नृत्य और गान संयुक्त दृश्य को जिसमें शृंगार तथा हास्य रस की प्रधानता होती है 'नाट्य रासक' कहते हैं।

नोट १—रासलीला और स्वांग आदि भी जो बिना 'पचनिका' आदि दिखाये जाते हैं नाट्यकला ही के भेदों में गर्भित हैं।

नोट २—नाट्य के मुख्य दो भेद रूपक और उपरूपक हैं।

रूपक के १० मूल भेद--नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, इहामृग, अङ्क, वीथी और प्रहसन हैं।

उपरूपक के १८ मूल भेद--नाटिका, त्रोटिका, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश, और भाणिका हैं।

इनके अतिरिक्त नाट्य ग्रन्थों में नाट्य के और भी अनेक भेदोपभेद और नाटक सम्बन्धी ५ सन्धि, ४ वृत्त, ६४ संध्यंग, ३६ लक्षण, और ३३ नाट्यालंकार तथा नायकों के १४४ भेद और नायकाओं के भी अनेक भेदोपभेद आदि गिना कर उनके लक्षण और स्वरूपादिक का सविस्तर निरूपण पाया जाता है। यहां पाठकों की जानकारी के लिये नाट्यकला सम्बन्धी थोड़े से प्रसिद्ध पारिभाषिक शब्दों का केवल दिग्दर्शन कराया गया है। जिन्हें विशेष जानने की आकांक्षा हो वे बड़े बड़े नाट्य ग्रन्थों का अवलोकन करें।

१०. संगीत

[THE ART OF MUSIC & DANCING]

संगीत विद्या यद्यपि साहित्य का विषय नहीं है तथापि इसकी आधारभूत उपादान सामग्री अनेकानेक प्रकार के राग और रागनियां हैं जिनका घनिष्ट सम्बन्ध पद्यात्मक रचना से है तथा राग रागनियों का पूर्ण रसास्वादन उन्हें तालस्वर अंगहारादि के साथ गाते देखकर ही आने से संगीत को भी कुछ विद्वान् दृश्यकाव्य ही का एक भेद (नाटक के समान) मानते और "संगीतमपि साहित्यं", ऐसा वचन कहते हैं जो वास्तव में युक्तियुक्त है। अतः इस ग्रन्थ के पाठकों की जानकारी के लिये इसकी पद्यात्मक रचना के मूल भेद उपभेद आदितथा उस के मुख्य मुख्य पारिभाषिक शब्दों की भी परिभाषा संक्षेपसे नीचे दी जाती है:—

१६६. संगीत—गाने की विद्या या गानकला को संगीत या संगीतविद्या या संगीतकला कहते हैं। इसके तीन अङ्ग (१) गान (२) तालवाद्य और (३) नृत्य हैं। "गीतंवाद्यं च नृत्यं च त्रयं संगीत मुच्यते"। इति वचनात्॥

(१) गान

[SINGING]

१६७. रागरागिनी (The Modes in music, Songs)--सांगीतिक समाज के अनुरंजक स्वरसमुदायविशेष को 'रागरागिनी' कहते हैं। स्वर या ध्वनिविशेष में श्रुति और मूर्छना (नं० १७५, १७६) के मिलने से रागरागिनी उत्पन्न होती हैं।

राग रागिनियों के मूल भेद ४ और उत्तर भेद ८६ निम्न प्रकार हैं:—

(१) राग ६--(१) भैरव (२) श्री (३) मालकौस (४) दीपक (५) मेघ (६) हिंडोल।

(२) रागिणी या रागपत्नि ३०—(१) भैरवी (२) विभाकरी (३) गुर्जरी (४) शुनकरी (५) बिलावल (६) गौरी (७) गौरा (८) नीलावती (९) विहंगड़ा (१०) विजयन्ती पूरिया (११) भटहारी (१२) सरस्वती (१३) रूपमंजरी (१४) चतुरकदंबी (१५) कौशिकनन्दिनी (१६) कान्हड़ा (१७) किदारा (१८) अड़ाना (१९) मारू (२०) विहाग (२१) सारंग (२२) गौड़गिरी (२३) जैजैवंती (२४) धूलिया (२५) सुभावती (२६) टोड़ी (२७) जयश्री (२८) आसावरी (२९) बंगाली (३०) सैंधवी।

(३) रागपुत्र ३०—(१) देवगंधार (२) विभास (३) देवसाग (४) गंधार (५) सूहा (६) कल्याण (७) गौड़ (८) तनैना (९) हेमकल्याण (१०) खेमकल्याणनट (११) अंग (१२) वैराग्य (१३) विहंग (१४) सुहंग (१५) परज (१६) गारा (१७) जलधर (१८) शंकराभरण (१९)

शंकराकरण (२०) शकरा (२१) सावन (२२) गौडमलार (२३) नटमलार (२४) मोदमलार (२५) मधुमाध (२६) मका (२७) लंकदहन (२८) खट (२९) बसंत (३०) पंचम ॥

(४) रागपुत्रवधू ३०-(१) सुघरई (२) सूही (३) जूही (४) कुरङ्ग (५) बहुली (६) अहीरी (७) टंक (८) सिन्धाड़ा (९) विहंगिनी (१०) लक्ष्मी-मांझ (११) सोहिनी (१२) अरघटी (१३) नागवती (१४) ललिता (१५) रामकली (१६) सोरठ (१७) लंकधर (१८) काफी (१९) पार्वती (२०) पूरवी (२१) सकवती (२२) गौड़वती (२३) देवगिरी (२४) कुकुब (२५) मधुमाधवी (२६) रूपमंजरी (२७) पटमंजरी (२८) भीमपलासी (२९) बसंती (३०) रिवासुरी ॥

१६८. ऋतु और समय (The Season & Time)--राग नं० १, २, ३ बारहमासी हैं जिनमें से नं० १ का प्रधानकाल प्रातःकाल, नं० २ का सायंकाल, और नं० ३ का रात्रिसमय है। राग नं० ४ की प्रधानऋतु ग्रीष्म, नं० ५ की वर्षा, और नं० ६ की शीतऋतु हैं।

१६९. नाद (A Sound) संगीतकला का मूलाधार 'नाद' है जिसके मूल भेद दो (१) आहत और (२) अनाहत हैं।

१. अनाहतनाद--किसी आघात बिना ही उत्पन्न होने वाले नादको 'अनाहतनाद' कहते हैं। यथा--कानोंमें अँगुली देनेसे जो साँ साँ का कुछ ध्वनि सुनाई पड़ती है। संगीतकलासे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

२. आहतनाद--किसी आघात से उत्पन्न होने वाले नाद को "आहतनाद" कहते हैं। संगीतकला से केवल इसी नाद का सम्बन्ध है।

१७०. स्वर (A Note or Tone in Music)--मन के संकल्पानुसार जो नाद कंठ द्वारा जिह्वा, तालु, ओष्ठ, नासिका आदि की सहायता से ध्वनित होता है उसे 'स्वर' कहते हैं। (नं. १७८)

१७१. सरिगम(The Gamut)--सात स्वरों के संकेताक्षर स, रि, ग, म, प, ध, नि, इनको 'सरिगम' कहते हैं।

१७२. टीप (The Position of Stopping a Tone)--षड्ज से प्रारम्भ होकर आगे जिस स्वर पर स्वर की यति (विश्राम) होती है उसे 'टीप' कहते हैं।

१७३ आरोही स्वर (*An Ascending Tone*)--जो स्वर षड्ज से ऊपर को 'टीप' की ओर क्रम से चढ़े उसे *'आरोही' या 'आरोहण' स्वर कहते हैं।*

१७४. अवरोही स्वर (*A Descending Tone*)—जो स्वर टीपसे नीचे को षड्जकी ओर क्रम से उतरे उसे 'अवरोही' या 'अवरोहण' स्वर कहते हैं।

१७५. मूर्छना (The Modulation or Ascending & Descending of Tones)—सातों स्वरों के आरोहावरोह को 'मूर्छना' कहते हैं। (नं० १७८)

१७६. श्रुति (A Division of the Octave, or a quarter Tone)—

१. कर्णगोचर होकर हृदयांकित होने वाली ध्वनिविशेष को 'श्रुति' कहते हैं।

२. श्रुति के समुदायविशेष को उच्चारणापेक्षा 'स्वर' कहते हैं।

तीन प्रकार के नादों में से प्रत्येक के २२, २२ भेदों को 'श्रुति' कहते हैं *जो हृदय* कण्ठ और मस्तिष्क स्थानों की २२, २२ नाड़ियों से अलग अलग उत्पन्न होती *हैं।* नाड़ियां क्रमसे एकसे एक ऊँची होनेके कारण उनसे उत्पन्न होने वाली श्रु*ति (श्रुति-*विशेष) भी ऊंची २ होती जाती हैं। (नं० १७७)।

१७७. श्रुतियों की जाति (*The Genus of a* ... T ... *उपर्युक्त* *श्रुत हैं* यां निम्न प्रकार ५ *जाति में विभक्त हैं*:—

१. दीप्ताजातिक श्रुति *४-तीव्रा, रौद्री,* ...

१८५. प्रसिद्धताल--इकताला से फ़रोदस्त तक ५ और रूपक, यह ५॥ ताल अधिक प्रसिद्ध हैं।
१८६. ताल संख्या—छन्दों और रागों की समान तालों की गणना बहुत है। स्वर-सागर में ताल की संख्या ५६०० से भी अधिक बताई गई है जिनमें से वर्त्तमान काल में अधिकतर केवल १६ से काम लिया जाता है।
१८७. प्रसिद्ध तालों के कुल नाम—(१) धीमा-तिताला (२) जलद-तिताला (३) चौताला (४) आड़ा-चौताला (५) दादरा (६) कव्वाली (७) फ़रोदस्त (८) इकताला (९) रूपकताला (१०) झूमरा (११) सूलफ़ाख़्ता (१२) रामताल (१३) सुरफ़ताल (१४) मेघताल (१५) धमार ताल (१६) अद्धा (१७) दीपचंद (१८) झपताल (१९) पिंडतों (२०) चंचल चपक (२१) सवारी (२२) ब्रह्मताल (२३) योगब्रह्म (२४) लक्ष्मी ताल (२५) रुद्र १६ मात्रा का व रुद्र-ताल १५ मात्रा का (२६) षट्ताल (२७) धृतिताल (२८) अष्टमंगल (२९) नवधा (३०) मयूरताल (३१) सिंहताल (३२) शार्दूल ताल (३३) धीरताल (३४) श्रीताल (३५) चंद्रताल (३६) सूर्यताल (३७) क्रमताल (३८) वृहत्क्रमताल (३९) विष्णुताल (४०) इन्द्रताल (४१) रणताल (४२) राजताल (४३) महाराज-ताल (४४) गोपालताल (४५) गजताल (४६) शंखताल (४७) शरताल (४८) घनताल (४९) घनताल (५०) दीपकताल (५१) कीर्त्ति-कताल (५२) महेशताल (५३) चामर ताल (५४) कोकिलताल (५५) घटताल (५६) नटताल (५७) चटताल (५८) सरस्वती ताल (५९) ध्रुवताल (६०) कृष्णताल।
१८८. लय (*A Tono in Singing, Melody or Symphony*)—ताल व गति की समता को 'लय' कहते हैं।
१८९. द्रुतलय (*A Quick Tone* दुगन)—तालावृत के कुछ काल परिमाण (अनियमित) को 'द्रुतलय' कहते हैं।
१९०. मध्यलय (*A Moderate Tone* डा)—जिसका काल परिमाण द्रुतलय से दूना हो।
१९१. विलम्बितलय (*A Tardy Tone* ठाकीठः)—जिसका काल परिमाण मध्यलय से भी दूना हो।
१९२. संकीर्णलय (*A Mixed or Confounded Tone* संकरलय)—जिसमें निरन्तर एक लय न हो। कभी द्रुत, कभी मध्य और कभी विलम्बित लय हो। इसे 'मिश्रितलय' भी कहते हैं।
१९३. वाद्य—स्वर ताल और लय को ठीक रखने वाले वादित्रों या बाजों को "वाद्य" कहते हैं।
१९४. राग वाद्य—राग वाद्य के मूल भेद दो हैं:—
[१] तत—जो तार चढ़ा कर बजाये जाते हैं। जैसे—वीणा, सितार, रबाब, स्वरशृङ्गार, सरोद, सारंगी, तम्बूरा, इत्यादि।
[२] सुषिर—जो कंठ द्वारा निकली हुई फूंक से बजाये जाते हैं। जैसे—वंशी, शहनाई, अलगोजा, इत्यादि।
१९५. तालवाद्य—तालवाद्य के भी मूल भेद दो ही हैं:—
[१] आनद्ध—जो चाम से मढ़े रहते हैं। जैसे-दुन्दुभि या नक्कारा [नगारा], मृदङ्ग, ढोल, तबला, पखावज, इत्यादि।
[२] घन—जो परस्पर टकरा कर बजाये जाते हैं। जैसे-खड़ताल, मँजीरा, इत्यादि।

(३) नृत्य
[DANCING]

१९६. नृत्य—हस्त पादादि शरीराङ्गों की रसोद्भावक चेष्टाविशेष को 'नृत्य' कहते हैं।
१९७. नृत—लय ताल सहित नृत्य को 'नृत्त' कहते हैं।